卐 श्रीराम 卐

वाल्मीकीय रामायणसार

(पद्य)

सुन्दरकाण्ड

रचयिता
श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

卐 श्री राम 卐

सुन्दरकाण्ड

रचयिता
श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

प्राप्ति स्थान :
श्रीरामशरणम्, ८ ए, रिंग रोड, लाजपत नगर–४
नई दिल्ली–११००२४

web.site-shreeramsharnam.org
E-mail address: shreeramsharnam@hotmail.com

प्रकाशक :-
श्री स्वामी सत्यानन्द धर्मार्थ ट्रस्ट,
८ ए, रिंग रोड, लाजपत नगर–४
नई दिल्ली–११००२४

वाल्मीकीय रामायणसार
रचयिता
श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

श्री स्वामी सत्यानन्द धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा
सर्वाधिकार सुरक्षित न. एल.–१४१७६/ ६४

पहला संस्करण प्रतियां २०,०००
दूसरा पुनर्मुद्रण प्रतियां ३२,०००
तीसरा पुनर्मुद्रण प्रतियां २०,०००

मुद्रक तरूण आफसेट प्रिंटर्स,
ए-१, मायापुरी,
नई दिल्ली-११००६४

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१
सुन्दरकाण्ड	५
श्री हनुमान का समुद्र को पार करना	६
असुर वेश में, रात में, हनुमान जी का सीता जी को खोजना	८
हनुमान जी का अशोक वाटिका में प्रवेश	१३
सीता जी को देख कर, वृक्ष पर छुप घटनाओं को देखना	१६
अनुकूल अवसर पर, हनुमान जी ने सीता जी को स्वपरिचय और राम सन्देश दिया	३३
सीता-सन्देश लेकर हनुमान जी का इस पार आ स्वसंघ को मिलना	५१
सफल अंगद दल का किष्किन्धा को प्रस्थान करना	५३
श्रीराम जी को हनुमान जी ने सीता का समाचार सन्देश सुनाया	५४
श्रीराम जी ने अत्यन्त आभार प्रकट कर, हनुमान जी को गले लगाया	५६
रामायण-माहात्म्य	५८

(रामायणसार पृ. १३)

सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः (७ बार)

मंगलाचरण

परम पुरुष परमात्मा, एक प्रभु सुख धाम ।
परम गुरु सिमरूं प्रथम, राम राम कह नाम ।।१।।
सर्व ऋषि मुनि सन्त का, ध्येय इष्ट गुरु एक ।
भाव भावना भक्ति से, सिमरूँ मैं सिर टेक ।।२।।
परम सत्य प्रकाश है, वह सर्व शक्तिमान् ।
परम ज्ञान आनन्दमय, प्रिय रूप भगवान् ।।३।।
सकल विश्व की चेतना, अन्तर्यामी ईश ।
सिमरूँ मैं सुख शान्ति कर, देव-देव जगदीश ।।४।।
सदा एक रूप सर्वदा, विद्यमान सब स्थान ।
नारायण सिमरन करूँ, सब सुख सिद्धि निधान ।।५।।
शिव शुभ शांत अद्वैत शुचि, मंगल रूप महान् ।
महिमामय महेश प्रभु, सिमरूँ मैं कर ध्यान ।।६।।
नत शिर दो कर जोड़कर, मांगू मैं वरदान ।
चारु चरित रघुराज का, सब का करे कल्याण ।।७।।

दशरथ सुत श्री जानकी, शुभ सुन्दर अभिराम ।
चारु चरित आदर्श दो, सिमरूँ सीताराम ।।१।।
उच्च चरित के चारुतम, चित्र परम अभिराम ।
चमके चम चम चाँद ज्यों, सुन्दर सीताराम ।।२।।
मानव जीवन विमल के, थे दोनों दृष्टान्त ।
सीताराम अतुल युगल, गुणगण-निधि शुचि शान्त ।।३।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

अनुपम उपमा प्रेम की, सुप्रण की रमणीक ।
थे शुभ धर्म सुज्ञान की, पावन परम प्रतीक ।।४।।

यद्यपि देह से दो वे, जन-नयनों को भान ।
होते पर तो एक थे, शक्ति श्री शक्तिमान् ।।५।।

भावों से गुण गुणी वत्, सत्ता द्रव्य समान ।
शब्दार्थ यथा एक थे, भगवती श्री भगवान् ।।६।।

रविरश्मि, शशिज्योत्सना, ज्यों रखते हैं योग ।
ऐसा सीताराम का, माना मधुर सुयोग ।।७।।

वन्दन करता हूं उन्हें, मैं नत-शिर बहुबार ।
जग में सीताराम का, होवे जय जयकार ।।८।।

आदि कवि वागीश ऋषि, विद्या ज्ञान भण्डार ।
वाल्मीकि ऋषिवर हुआ, कविता का अवतार ।।१।।

ओज तेजयुत वचन में, वर्णन कर गुण-ग्राम ।
मूर्तिमान किये मधुर, उसने सीताराम ।।२।।

वरतर वर्णन विशद कर, विविध सुविधि के साथ ।
बनी विमल वाणी वरा, उसकी गा रघुनाथ ।।३।।

कवि-कोकिल-कूजन कला, कोमल काव्य महान् ।
ऋषि-ग्रन्थ सुर तरु से, सुनिए धर कर कान ।।४।।

चरित-प्रतिमा अप्रतिम, पूर्ण पावन रूप ।
कवि-कविता कुटी में शुचि, लखिए प्रिय सुरूप ।।५।।

मन्दिर मान रामायण, मन मोहक सह आभ ।
दर्शन कर श्रीराम के, अलभ्य लो मिल लाभ ।।६।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

सिया राम की जीवनी, जीवन-जड़ी निधान ।
हिन्दू-संस्कृति जाति का, है जो जीवन प्राण ।।७।।

रची सुरचना रुचिकरी, मुनि ने कर उपकार ।
हो मम उसके चरण पर, नमस्कार बहु बार ।।८।।

ऋषि मुनि सिद्ध महात्मा, सज्जन सन्त सुजान ।
सुगुण-सुमन-शोभित सदा, सब में रहें समान ।।१।।

सदय हृदय शम दम शुचि, धृति धारणा धार ।
धरा-धर धरणी पर बने, बरसें सार विचार ।।२।।

गुण-गण आगर धर्म-धर, सागर ज्ञान विज्ञान ।
वे सब मैं वन्दन करूँ, आगम निगम-निधान ।।३।।

सुर-सम्पद्-सम्पन्न जो, देव शक्ति के स्थान ।
उनको मैं बहु भाव से, देता हूँ सम्मान ।।४।।

आत्मदर्शी अनुभवी, वीत-राग गत-दोष ।
राम नाम में मग्न मन, जिनमें शील सन्तोष ।।५।।

परा प्रीति के पूर जो, जिनका विमल विवेक ।
करता हूँ प्रणाम मैं, उनको मस्तक टेक ।।६।।

भक्ति भाव भरपूर जो, भावुक भक्त अशेष ।
प्रभु परायण भागवत, वन्दूँ मैं सुविशेष ।।७।।

सर्व देश जन जाति के, पक्षपात से पार ।
सम-दृष्टि हैं शान्त जो, हो उन्हें नमस्कार ।।८।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

वर्तमान व्यतीत के, गुणी ज्ञानी विद्वान् ।
वन्दे शब्द विनीत से, हो उन्हें आदर-दान ।।६।।

यति सती सच्चे सूरमे, सेवक साधु समाज ।
उन्हें विनय से मैं नमूँ, मंगल आशिष काज ।।१०।।

राम-भक्त सेवक चतुर, महा बली गुणवान् ।
सदा सहायक कर्म में, रहा वीर हनुमान् ।।१।।

पवन-पुत्र वरतर पुरुष, अंजना-सुत वज्रांग ।
सुन्दर गठित सुडौल तन, कुन्दन कंचन रंग ।।२।।

विद्युत् वायु-सुवेगवत्, गमनागम गति-धार ।
विस्मयकर करता कर्म, कर्म-कुशल सुखकार ।।३।।

दलपति शुभमति सूरमा, स्थिर बुद्धि नरराज ।
सच्चा सेवक स्वार्थ तज, विचरा रघुपति-काज ।।४।।

नीति-निपुण नेता निडर, जी जीवन कर एक ।
करता सीता राम-हित, अद्‌भुत कर्म अनेक ।।५।।

परा भक्ति अनुरक्ति से, सेवे सीता राम ।
उसने विरक्ति शक्ति से, किये प्रभु के काम ।।६।।

सेवा पथ में उच्चतर, पूर्ण वह प्रमाण ।
अनुपम पर उपमा बना, अर्पण कर स्व प्राण ।।७।।

ऐसे अन्य अनेक जन, सेवक वीर सुधीर ।
राम काम में मग्न मन, अर्पण किये शरीर ।।८।।

कर्मयोग को राधते, उपमा करके राम ।
बार बार मेरा उन्हें, होवे बहु प्रणाम ।।६।।

(रामायणसार पृ. ४२८)

सुन्दरकाण्ड

पहला सर्ग

*सदा सफल सब कार्यकारी, बली वीर महा शक्तिधारी ।
मति गति वेग अतुल जन जाना, हनुमान् गुणवान् बखाना ।।१।।
सिद्धिसदन विधुवदन सुशूरा, कर्मकुशल ज्ञानीवर पूरा ।
जावे जहाँ सफलता पाये, बिगड़े काम तुरन्त बनाये ।।२।।
संकट नाशी विघ्नविनाशी, कामना कल्पतरु सुखराशी ।
राम भक्त संगी सुखदायक, सच्चा सुहृद् समर्थ सहायक ।।३।।
धर्मधुरीण धीर धरा-सा, निर्मल विद्वान् विद्या परा-सा ।
निर्भय सूरमा असुर विजेता, नीति निपुण नर जन गण नेता ।।४।।
पवनपूत पावन उपकारी, सिद्ध हस्त सब जग संचारी ।
महामना मुद मंगल दाता, प्रेम परायण का परित्राता ।।५।।

†ऐसा नरवर वीरतर, प्रेरित किया विशेष ।
जाम्बवान् ने उस समय, ज्यों हो काम अशेष ।।६।।
जाम्बवान् के सुन वचन, पवन-पुत्र अति शूर ।
सज्जित सर्व शरीर कर, बना वीर-रस-पूर ।।७।।
भाल लाल विशाल सहित, भानु सम दिव्य रूप ।
परम हर्ष को धार कर, उठा वह बल सु-रूप ।।८।।
बोला बहुत गम्भीर बन, होकर नम्र विशेष ।
तरता हूं भुज-शक्ति से, मैं यह सिन्धु अशेष ।।९।।

---

* चौपाई। † दोहा।

जाऊँगा निर्विघ्न मैं, सागर के उस पार ।
देव असुर जन लोक से, सकूं नहीं मैं हार ।।१०।।
रोक टोक को काट कर, सब बाधा कर बाध ।
लहरी लोलित लवण जल, लूँ मैं लांघ अगाध ।।११।।
पूर्ण, मम मन बुद्धि में, बसा ऐसा विश्वास ।
आऊँगा मैं लौट कर, जा सीता के पास ।।१२।।
मन में मोद मनाइए, तुम सब चिन्ता छोड़ ।
आता हूँ मैं सफल हो, असुर-गर्व को तोड़ ।।१३।।
ऐसा जन जग में नहीं, जो मुझ को ले रोक ।
मेरा मार्ग है खुला, दश दिश तीनों लोक ।।१४।।
वीरवर्य के सुन वचन, वीरोचित बहु वार ।
वानरवर तब वे बली, हर्षित हुए अपार ।।१५।।
देखा पर्वत शिखर सा, सब ने वह उस काल ।
तेजोमय रवि-बिम्ब सा, वज्रावयवी विशाल ।।१६।।
बोले वानर वीरवर, यह राघव के काज ।
तरने लगा है वारिधि, भुज से बलधर आज ।।१७।।
अंग सुसज्जित कर सभी, कूदा सिंह समान ।
जाता जल को चीरता, वह ज्यों हस्ति महान् ।।१८।।
वह जाता था वेग से, सीधा जैसे बाण ।
महा पोत जैसे बढ़े, नभ में ज्यों रवि-यान ।।१९।।
ग्रह चक्र सब मत्स्य गण, पाकर मृत्यु-त्रास ।
भगे भीरु भय-भीत हो, भूले भूख निवास ।।२०।।
देख वीर हनुमान की, अति भयकरी कुदान ।
महा मच्छ थे भागते, सर्व नाश ही मान ।।२१।।

काँप रही जलराशि थी, उठती लहर उत्ताल ।
होती जल की गर्जना, देती प्राण निकाल ।।२२।।
उस के भुज प्रहार से, जल छींटे नभ ओर ।
चढ़ते इन्द्र-धनुष ले, धार वेग अति घोर ।।२३।।
उन में सूर्य-बिम्ब आ, करता बहुत किलोल ।
लहरों में बहु रूप बन, होता डांवां डोल ।।२४।।
उस के पद-फटकार से, ताड़ित जल के संग ।
हत होते जल-हस्ति भी, लिये भंग निज अंग ।।२५।।
उस की छाती से छिला, जाता सागर-पाट ।
उसका तन हिम खण्ड सम, देता लहरें काट ।।२६।।
निर्मल नीले सलिल को, तरता वह बलवान् ।
ज्यों नभ नीलविशाल को, लांघे महा विमान ।।२७।।
पर्वत हिरण्यनाभ को, लांघ गया कर वेग ।
वायु-वेग वश ज्यों गिरी, लांघे भारा मेघ ।।२८।।
स्थल गिरि जल पार कर, परले पहुँच तीर ।
गया गिरी त्रिकूट पर, वह नर-वीर सुधीर ।।२९।।
* उस ने लंका पुरी, खड़े हो वहां निहारी ।
मण्डित कलश सुवर्ण, सहित उद्यान फुलवारी ।।
राज-मार्ग विभक्त, सर्व से शोभित भारी ।
नन्दन वन के तुल्य, अति रमणीया सारी ।।३०।।
कूप वापिका सहित, वाटिका वन उपवन भी ।
देखे उस ने पेड़, सहितफल छाया सुमन भी ।।

* रोला।

नाना विहग विचित्र, विचरते रमते जन भी ।
सैनिक वीर विशेष, बांके सुहर्षित मन भी ।।३१।।
कोट दुर्ग के सहित, रक्षित बहु सेना सेती ।
दीखी उसे विशाल, पुरी उल्लास हो लेती ।।
सुदृढ़ तोरण द्वार, सहित वह शोभा देती ।
सुरपुरी के सदृश, सजी शुचि सुन्दर ऐती ।।३२।।
उत्तर फाटक पास, गया वह धीर धृति धर ।
ऊँचा ज्यों कैलाश, देख कर उसको नरवर ।।
लगा सोचने यही, इस को लांघे कौन नर ।
दुर्गम है यह स्थान, पुरी में जाना दुष्कर ।।३३।।
सोच समझ कुछ काल, यही उस ने निर्धारा ।
असुर-रूप को धार, करूँ मैं कार्य भारा ।।
बदलूँ वानर-वेश, भरूँ मैं सुरूप न्यारा ।
सीता की कर खोज, बनूँ रघुपति का प्यारा ।।३४।।
[विषम समय हो देश, जन सब हों भी पराये ।
बुद्धिमान् जन धीर, तथापि नहीं घबराए ।।
दाव पेंच रच रूप, काम स्व सिद्ध बनाये ।
नीति-निपुण अति कुशल, चतुर वह सफल कहाये] ।।३५।।
[बनें रात में काम, जहां न होवे उजाला ।
चलते चाल विशेष, काल हो गड़बड़ वाला ।।
भीतर बाहर रहे, अन्धेरा जब निराला ।
करते अपने काम, चतुर चुप चल कर चाला] ।।३६।।
सूर्यास्त के समय, निशा जब दश दिश छाई ।
बुद्धिमान हनुमान्, कोट गढ़ लांघे खाई ।।

घुसे नगर के बीच, चाल चल कर चतुराई ।
फिरते बाटों बाट, दिये वे असुर दिखाई ।।३७।।
लुक छिप कर रच ढंग, करते अनुसन्धान थे ।
देखते ऊँचे घर, राज-घर जो महान् थे ।।
चित्रित चारु सुरूप, चमकते शशि समान थे ।
सज्जित रजत सुवर्ण, रत्नयुत सुर-विमान थे ।।३८।।
भव्य भवन बहु भान्ति, भूमि पर भूषित भाते ।
धवल पीत शुचि श्याम, आठ खन नभ को जाते ।।
खोजे सब एकैक, उसने दृष्टि टिकाते ।
उसको मिला न भेद, सिया का चक्कर खाते ।।३९।।
उसने देखे गृह, बज रहीं जहां सितारें ।
वीणा तंत्री नाद, करते जहाँ झंकारें ।।
ताल सुरों के साथ, माधुरी हिलती तारें ।
गाते गायक राग, झूलते शब्द उच्चारें ।।४०।।
घर स्वस्तिकाकार, निहारे उसने नाना ।
नारी जन का जहाँ, रहा हो आना जाना ।।
भूषण भूषा भव्य, विभूषित भासित बाना ।
वे थीं सह सिंगार, शोभतीं चाँद समाना ।।४१।।
देखे उसने असुर, खेल में मन बहलाते ।
खान-पान में मग्न, नर्तक मोद में गाते ।।
करते हास विलास, रसिक रस रास रचाते ।
जप स्वाध्याय रत, मंत्र सुसिद्ध बनाते ।।४२।।
उसने देखे लोग, काले कुरूप भंयकर ।
क्रोधी क्रूर कठोर, पर नारी धन-धान हर ।।

डेवड़ी पर अनेक, खड़े राजा के अनुचर ।
भाला खड्ग कटार, गदा दण्ड त्रिशूल धर ।।४३।।
देखता नाना जन, गया वह हलके पद से ।
बचता चलकर चाल, निकला जन के नद से ।।
राज-भवन में गया, भरा जो माया मद से ।
लगा खोजने वहां, बुद्धि बल नीति विशद से ।।४४।।
देखा राज निवास, उसने सुगिरी शिखर पर ।
जिसका था प्रकार, चारों ओर सुदृढ़तर ।।
वेष्टित खाई बीच, खिले थे जहां कमल वर ।
ऊँचा सज्जित भवन, दीखता शोभा-आकर ।।४५।।
सुन्दर रथ थे वहां, थे घोड़े हिन-हिनाते ।
हस्ति-शाला बीच, करी वर सूंड हिलाते ।।
शोभित सब गजराज, झूमते कान झुलाते ।
मणि मोतीमय साज, महा शोभा थे पाते ।।४६।।
उसी महल के मध्य, घुसा वह चुप चुपाता ।
धीरे धरता पैर, फिरा फिर नयन फिराता ।।
कोण कोटरी सभी, ध्यान दृष्टि में लाता ।
नारी गण पर अधिक, खोज के नयन जमाता ।।४७।।
उसने देखी वहां, रावण जिन्हें हर लाया ।
देश जाति गृह से, असुर ने जिन्हें भगाया ।।
दाव-पेंच रच स्वांग, शक्ति से जिन्हें उठाया ।
नारी-रत्न अनेक, हरीं उस रचकर माया ।।४८।।
खान-पान कर नाच, थकी थीं मोद मनाती ।
हास विलास विशेष, बीच रह रमती गाती ।।

निद्रा बीच वे सभी, पड़ी बेसुध सुख पाती ।
तज भूषण पहरान, सुप्त थीं मुद मद माती ।।४६।।
सब मुखड़ों पर नयन, फिराता अनुसन्धानी ।
मन में रख यह बात, कहीं हो राघव-राणी ।।
कृत्रिम कुसुमों से, हटे ज्यों षट्पद प्राणी ।
तथा हटाता आँख, सिया नहीं जान ज्ञानी ।।५०।।
फिरता वह तब गया, दिव्य वर एक स्थान में ।
जड़े हुए थे रत्न, विभूषित उस मकान में ।।
सुवर्ण चित्र अद्भुत, सजे थे शुचि दलान में ।
थीं माला बहु भांति, शोभित स्थान महान् में ।।५१।।
सजा सुवर्ण पलंग, सुन्दर मृदु बिछान से ।
मोती झालर साथ, बढ़िया देव-विमान से ।।
दीखा उस पर उसे, सुप्त नर आन बान से ।
समझा रावण वह, है लगता अनुमान से ।।५२।।
पास सेज पर पड़ी, लखी जो उसने नारी ।
रूप रंग की राशि, सौन्दर्य था तन धारी ।।
समझा कर अनुमान, सुबुद्धि अन्वेषणकारी ।
है पटराणी यही, शुभ मन्दोदरी सारी ।।५३।।
महिला मण्डल वहां, देख कर उसने ऐसे ।
सोचा निज मन बीच, जाऊँ बच पाप से कैसे ।।
नारियां देखना यों, सुप्त जो ऐसे वैसे ।
है निरा अनाचार, कर्म अधम कहा जैसे ।।५४।।
करते यही विचार, उस के चित्त में आया ।
पाप-बुद्धि से नहीं, लखी मैंने पर काया ।।

मुझ में नहीं कुभाव, देखते लेश समाया ।
मन में नहीं विकार, आया देख ये जाया ।।५५।।
स्त्रीगण को छोड़, खोजता और कहाँ जा ।
नारी जन अतिरिक्त, पता नहीं सकता मैं पा ।।
जैसी जो हो जिनस, खोजिए उस में ही आ ।
मनुजा हरिणों बीच, मिले नहीं बुद्धि बल ला ।।५६।।
साहस उत्साह धार, चला वह चक्कर देता ।
लगा देखने स्थान, विचक्षण भेद का वेत्ता ।।
गुप्त रमण के स्थान, देखता सुध बुध लेता ।
सीता-भेद न जान, हुआ उदास वह नेता ।।५७।।
हुआ चित्त में चूर, चिन्ता शोक से चंचल ।
दृढ़ चट्टान समान, रहा नहीं चतुर अविचल ।।
मरना किया विचार, उसने निज मन के स्थल ।
धिक्कृत जीना जान, जगत् में होकर निष्फल ।।५८।।
उस ने सोचा बहुत, चिता चिन आँच लगाऊँ ।
उस पर चढ़ कर आप, भस्म मैं देह बनाऊँ ।।
अथवा जल में कूद, पुनरपि बाहर न आऊँ ।
खान-पान सब त्याग, कहीं मैं पड़ मर जाऊँ ।।५६।।
मुनि तापस बन रहूँ, वनों में धूनि रमा कर ।
पुष्प पत्र जो मिले, गिरा पड़ा वही खाकर ।।
काटूँ जीवन काल, सीस पर जटा बढ़ा कर ।
पर मैं निरा निराश, मिलूँ न सुजन को जा कर ।।६०।।
ऐसे करता सोच, रहा कुछ काल खड़ा वह ।
बदल विचार तरंग, कर फिर मन को कड़ा वह ।।

उत्साह आशा साथ, कर के साहस बड़ा वह ।
सिया खोज के हेतु, काम में कूद पड़ा वह ।।६१।।
सर्व श्रेष्ठ है यह, तजिए नहीं पुरुषार्थ ।
अन्त समय तक आश, रखकर साधिए स्वार्थ ।।
जी जीवन पर खेल, करिए सिद्ध परमार्थ ।
है ही शक्ति उद्योग, जीवन सार यथार्थ ।।६२।।
होवे नहीं निराश, कष्ट अति काल कड़े से ।
आगे बढ़ता जाय, मनस्वी उत्साह बड़े से ।।
भगें भ्रम भय भूत, उद्यमी वीर खड़े से ।
चूहा बिल्ली न डरे, आलसी लिटे पड़े से ।।६३।।

दूसरा सर्ग

*बुद्धि, शक्ति सम्भाल कर, फिर वह हुआ तयार ।
कूद चढ़ा तब देख कर, पास एक प्रकार ।।१।।
दीखी उसको वाटिका, फूली फली अशोक ।
पथ पेड़ खिले पुष्प से, सुन्दर ज्यों सुर-लोक ।।२।।
उस में कूदा वीर वर, फिरने लगा विशेष ।
उछल फांद सब स्थान में, करता वह प्रवेश ।।३।।
कुसुम क्यारे उद्यान में, दीखे उसे अनेक ।
विमल नीर की वापिका, दीखी तो कुछ एक ।।४।।
अमल सलिल की चल रही, सर सर करती कूल ।
सर जल में दल कमल थे, खिले सुगन्धित फूल ।।५।।

* दोहा।

घनी वनी थी वहाँ पर, झूल रही बहु बेल ।
रंग बिरंगे विहग गण, सोते पक्ष को मेल ।।६।।
लता-मण्डप आसन शुचि, सुन्दर क्रीड़ा-स्थान ।
कुसुम कमल के कुंज थे, कदली भाग महान् ।।७।।
चन्दन चम्पा पेड़ भी, आम नीम तरु शाल ।
उस ने नाना भान्ति के, देखे वृक्ष विशाल ।।८।।
उस वन में बहती नदी, निर्मल जिसका नीर ।
देखी उस ने रात में, था शुचि जिसका तीर ।।६।।
नदी तीर पर घास थी, हरित मृदु सम रूप ।
सुन्दर शिला समान से, तट था बहुत अनूप ।।१०।।
हनुमान् वहां ठहर कर, लगा सोचने बात ।
सीता आवे कदाचित्, यहाँ पर पिछली रात ।।११।।
भ्रमण रमण वनवास में, करती पति के साथ ।
वन-विचरण में मन किये, सिमरन कर रघुनाथ ।।१२।।
उद्यान-गमन अभ्यासिनी, वह तो हुए सबेर ।
आवेगी अवश्य यहां, इसी स्थान इक बेर ।।१३।।
पति-वियोग में व्याकुला, विरह वेदना मान ।
दिल-दुःख रोने के लिए, आवेगी इस स्थान ।।१४।।
सम्भव है आना यहां, उसका प्रातःकाल ।
सन्ध्या करने के लिये, ध्याने देव दयाल ।।१५।।
स्वच्छ जल शुभ नदी पर, नित्य कर्म मन ठान ।
सर्व सुन्दरी आ सिया, सिमरेगी भगवान् ।।१६।।
राज-राणी अनुकूल हैं, शुचि सुन्दर यह बाग ।
जीती है तो आयेगी, वह कर जल वन-राग ।।१७।।

पेड़ पत्र में रह छुपा, वहीं पर वह अवाक् ।
इधर उधर सब ओर ही, रहा लगाये ताक ।।१८।।
अन्धकार में मग्न जन, चाहें ज्यों आलोक ।
आतुर औषध को यथा, अन्न, क्षुधा में लोक ।।१९।।
चन्द्रोदय चाहे हुआ, चंचल यथा चकोर ।
सिया-दर्शन को वह तब, व्याकुल था उस ठौर ।।२०।।
रात शेष है समझ कर, करने को फिर खोज ।
चला चतुर वह घूमता, भीतर भर नव ओज ।।२१।।
गोल गृह दीखा उसे, श्वेत यथा कैलाश ।
मणि-मण्डित सोपानयुत, लांघ रहा आकाश ।।२२।।
सहस्र स्तम्भ थे सुदृढ़, उस में शोभावान् ।
सुखासन सुन्दर थे शुचि, नाना वेदी-स्थान ।।२३।।
घर के आँगन बीच तब, उसने नयन पसार ।
देखी देवी दुर्बला, अति क्षीण निराहार ।।२४।।
दूज-चांद सम निर्बला, सहित सहज निज जोत ।
धूम-घिरी ज्यों आग हो, शरद्-सरित् का सोत ।।२५।।
पुष्प-हीन ज्यों कमलिनी, तरु ज्यों पत्र-विहीन ।
वेश विभूषा रहित थी, त्यों वह दुखिया दीन ।।२६।।
वस्त्र पीले जीर्ण से, ढांक रही थी अंग ।
दुबली थी उपवास से, विषम विरह के संग ।।२७।।
सजल नयन नीचे किये, अन्तर्मुख कर ध्यान ।
लेती लम्बे सांस थी, ताडित नाग समान ।।२८।।
गौरी गुण गरिमा भरी, मूर्तिवत् कर मौन ।
बैठी थी मुख मूँद कर, जग-जीवन गिन गौण ।।२९।।

जिस ने दुःख देखा नहीं, कभी भी कष्ट क्लेश ।
बहुत विवश वह वेदना, पा थी रही विशेष ।।३०।।
चहुँ ओर से घिर रही, असुरी-दल से दीन ।
कुत्तियों से जैसे मृगी, यथा जाल से मीन ।।३१।।
दुःख-दशा में देखकर, उस को यों हनुमान् ।
सम्भव है हो यह सिया, करने लगा अनुमान ।।३२।।
बार बार की सोच से, चिन्ह सर्व पहचान ।
निश्चय सीता है यही, गया तभी वह जान ।।३३।।
*हनुमत् ने जब सीता जानी, उस की तब काया कंपानी ।
आँखों से बरसा वह पानी, बोला मुँह में मध्यमा वानी ।।३४।।
कष्ट क्लेश कटुतर ऐसे, कोमल-काया सहती कैसे ।
क्यों कर कडुवा काल बिताती, जीवित क्यों है दृष्टि आती ।।३५।।
शत शत संकट सह करके ही, फिर भी जीवित है वैदेही ।
वज्रमयी है इसकी छाती, विपद् विद्युत् से जो न फट पाती ।।३६।।
पुत्र-वधू दशरथ की जेठी, सहे ताडना देखे हेठी ।
राघव राज की पत्नी प्यारी, घिर बन्धन में हो दुखियारी ।।३७।।
सुवर्ण घर में बसने हारी, धूल पै बैठे यों वह नारी ।
सुगढ़ सुन्दर दासियों वाली, उसे घेरें असुरियां काली ।।३८।।
कुबड़ी विकलाअधिक कुरूपा, दीर्घ दन्त नखा कुविरूपा ।
चिपटी चौड़ी नाक चढ़ातीं, कर्कशकेशा कर फटकातीं ।।३९।।
मुखरी भय करी भद्दी ये ही, घेर रहीं इसको बल से ही ।
कर में लेकर खड्ग कटारी, हा हा हन हन कहें हत्यारी ।।४०।।

---
* चौपाई।

बोलती वचन विषम विषैले, बहुत बुरे वेधक बहु मैले ।
लप लप करतीं जीभ निकाले, मोटें होंठ परुष ले काले ।।४१।।
हनुमती लम्बोदरी बाला, फिरतीं ऊँठ यथा मतवाला ।
राघव-भार्या आर्या राणी, इन में घिरी ज्यों जाल में प्राणी ।।४२।।
देखूं सर्व यहां जो बीते, करें यत्न जब जन हों जीते ।
पत्रित तरु पर मैं चढ़ जाऊँ, तरु शाखा में देह छिपाऊँ ।।४३।।
लुक छिप कर निज कार्य साधूं, सफल बनूँ राघव-आराधूं ।
शिंशप पर चढ़ कर तब सो ही, पत्र शाखा में गुप्ततर हो ही ।।४४।।
देख रहा था ताक लगाए, ओर सभी को नयन फिराए ।
देखा तब हनुमान् ने आता, मत्त हस्ति सम नर मदमाता ।।४५।।
मणि मोती युत भूषण धारे, केश वेश विशेष संवारे ।
आता नारी गण का साथी, हथिनी दल युत जैसे हाथी ।।४६।।
लक्षण चिन्ह से उसने जाना, है रावण मन में यह माना ।
दबक सिमट कर लिपटा त्योंही, तरु शाख से वल्ली ज्यों ही ।।४७।।
अवलोकन कर रावण आया, कांप गई सीता की काया ।
पीपल-पत्र पवन से जैसे, कांपी वह उस से तब ऐसे ।।४८।।
मन रथ पर बैठी भय खाती, भर्ता ओर थी दौड़ी जाती ।
विचार-विद्युत्-वेग बढ़ाती, थी पति को वृत्त पैठाती ।।४६।।
पति की चरण-शरण में लीना, तन मन से थी दुखिया दीना ।
अवयव कछुएवत् सकुचाती, चित्त में पति नाम को ध्याती ।।५०।।
मधुर वचन से लगा लुभाने, उसे असुर निज भाव बताने ।
बोला वह, तू क्यों घबराई, तुझ पर है भयता क्यों छाई ।।५१।।
चाहता हूँ तुझे सुख देना, मैं दुखड़े तेरे हर लेना ।
मुझ से भय करो न कोई, मानों कहना सुन्दरि! सोई ।।५२।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

प्रीति करो मुझ पर तुम ऐसी, करे प्रिया प्रिय पर जैसी ।
क्यों तू यों भूपर है सोती, रख उपवास देह-बल खोती ।।५३।।
प्रेमपरा मेरी बन जाओ, कुसुम सेज पर सो सुख पाओ ।
अश्व हस्ति की करो सवारी, राग रंग सुनो सभी प्यारी ।।५४।।
मानिए कथन करो न देरी, मुझको कहो प्रिय, इक बेरी ।
सुख सम्पत् सब कुछ जो मेरी, उस पल से होगी वह तेरी ।।५५।।
यौवन, जीवन जाते बीते, सुख का समय तू खो न सीते ।
फिर लौट कर दिन नहीं आते, सुख के जो हैं छिजते जाते ।।५६।।
करो हार सिंगार सुहाने, भोगो भोग सर्व मनमाने ।
हास रमण से मन बहलाओ, मानव तन को सफल बनाओ ।।५७।।
तजिए राघव वल्कलधारी, वनवासी तापस भिखारी ।
उस मुझ में है अन्तर ऐता, राव रंक में होता जेता ।।५८।।
यहां रामचन्द्र का आना, मुझ से लड़ कर तुझको पाना ।
है असम्भव यह तथा ही, शशक-श्रृंग नभ-पुष्प यथा ही ।।५९।।
है शंकित उसका तो जीना, यदि जीवित हो भी बलहीना ।
तो भी अकिंचित् कर कहावे, यहां नहीं पद-चर आ जावे ।।६०।।
इस लिए कर रमण रमणीये!, भोगो भोग यथेष्ट प्रिये! ।
स्वजन स्नेही जो हैं, तेरे, वे भी पावें धन बहुतेरे ।।६१।।
मेरे नौकर चाकर जो भी, दासी-गण जितना है सो भी ।
राणी गण मेरा भी सारा, सीते! होगा सर्व तुम्हारा ।।६२।।
आज्ञा तेरी सदा चलेगी, वाणी तेरी नहीं टलेगी ।
मानेंगे सब जन तुझको ही, होगी तू प्रिया मुझको ही ।।६३।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

तीसरा सर्ग

*रावण के सुन वचन सब, सीता कर आवेश ।
बोली तब रोती हुई, पाती पीड़ा क्लेश ।।१।।
अपने घर से प्रेम कर, मुझ से तू मुख मोड़ ।
प्रीति लगा निज पत्नी से, पाप पतन पन छोड़ ।।२।।
पापी सिद्धि न पा सके, ऐसे मुझ को आज ।
तू तो पा सकता नहीं, तज दे कुत्सित काज ।।३।।
सु-कुल वंश की पुत्री को, है निन्दित यह काम ।
प्रेमभाव पर पुरुष से, कहा नरक का धाम ।।४।।
मैं इस कु-कर्म घोर में, पड़ूँ नहीं त्रिकाल ।
फिर मुझे ऐसा न कहो, जीभ वचन सम्भाल ।।५।।
पति-व्रता मैं हूँ सती, तू मुझ से मुख फेर ।
कम्पित हो अति पाप से, सोच धर्म इक बेर ।।६।।
निजू नारियों की यथा, तू रखता है आन ।
लाज धर्म पर-पत्नी के, ऐसे ही तू मान ।।७।।
क्या सन्त यहां हैं नहीं, सज्जन गुणी अपाप! ।
वा तुझ को रुचते नहीं, उनके कथन कलाप! ।।८।।
यदि सज्जन होते यहां, धर्म कर्म-रत लोग ।
तो तुझ में होता नहीं, व्यभिचार का रोग ।।९।।
सुन उनके उपदेश शुभ, पालन कर आचार ।
तजता सर्व कुकर्म तू, मानस नीच विकार ।।१०।।

* दोहा।

तज कर संगति संत की, तज सब सद् उपदेश ।
असुर नाश पर है तुला, पापी अधम नरेश! ।।११।।
कथन न्याय हित धर्म के, नहीं सुने जो भूप ।
सर्वनाश पावे सही, वही समृद्ध रूप ।।१२।।
इस कारण लंका पुरी, धन सम्पत् भरपूर ।
रत्नजड़ित हीरक मढ़ी, होगी चकनाचूर ।।१३।।
तेरे इस अपराध से, धन जन गण का नाश ।
होगा अवश्य समझ ले, तज दे मेरी आश ।।१४।।
तेरी धन सुख सम्पदा, निश्चय से तू जान ।
मेरे लिए तो है सब, हलाहल विष समान ।।१५।।
नर-वर रामचन्द्र की, अनन्य भार्या एक ।
रवि-प्रभा सम संगिनी, समझ मुझे सविवेक ।।१६।।
लोक-नाथ रघुनाथ की, करके भुज उपधान ।
मुझे नींद में भी कभी, अपर का न हो भान ।।१७।।
रामचन्द्र विद्वान की, पत्नी योग्य विनीत ।
हो कर करूँ न भूल से, कर्म धर्म-विपरीत ।।१८।।
स्वप्न में न मेरा मन, सोचे पर का संग ।
टूक-टूक चाहे करे, कोई मेरे अंग ।।१६।।
रामचन्द्र से मैत्री, कर ले तज हठ बान ।
शरणागत-वत्सल बड़े, हैं बहुत दयावान् ।।२०।।
रामचन्द्र धर्मज्ञ हैं, तेज शक्ति बलखान ।
क्षमा करा अपराध निज, करके आदर मान ।।२१।।
मुझे सौंप कर प्रभु को, रक्षित कर स्वप्राण ।
क्षमाशील वे देव हैं, धर्म रूप भगवान् ।।२२।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

एक मात्र उपाय यह, है तेरे अनुकूल ।
नहीं तो होगा तू हत, सहित जाति कुल मूल ।।२३।।
जब तक राघव-वाण की, हो न विषम बौछाड़ ।
तब तक प्राण बचाव का, मार्ग ले तू ताड़ ।।२४।।
रघुपति लक्ष्मण वीर के, जब बरसेंगे बाण ।
कोई न त्रयलोक में, होगा तेरी त्राण ।।२५।।
*सीता ने कह कथन करारे, कर्ण-कटु देह-वेधन हारे ।
रावण को ऐसा भड़काया, उसका मानस-वेग भुलाया ।।२६।।
सीता-कथन उष्ण सुन भारा, चढ़ा उसे कोप का पारा ।
भृकुटी तान नयन तिरेरे, जीभ अधर पर फिर फिर फेरे ।।२७।।
बोला वह उसको भय देने, तीक्ष्ण वचन वाणवत् पैने ।
वध के योग्य है तू नारी, अधिक हठीली बहुत करारी ।।२८।।
मन में आता है इक बारी, काटूँ काया तेरी सारी ।
पर अवधि दो मास की जो ही, दी थी है अब बाधक सो ही ।।२९।।
उस तक तू यदि कहना माने, मुझको अपना पति कर जाने ।
तो पावेगी सुख से जीना, नहीं तो समझ री मतिहीना ।।३०।।
अवधि अनन्तर पाचक मेरे, टुकड़े टुकड़े कर के तेरे ।
भून पका कर उन्हें सबेरा, प्रातराश लायेंगे मेरा ।।३१।।
वाक्य-वज्र से जनक-जाई, मेरु शिखर तुल्य न कम्पाई ।
धर्मधुरी धैर्य को धारे, बोली फिर भी वचन करारे ।।३२।।
निश्चय यहां न जन शुभचारी, है जनपद का कल्याणकारी ।
तुझे निन्दित कर्म से रोके, ऐसे वचनों को जो टोके ।।३३।।

---

* चौपाई।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

तुझ-सा अपर नहीं है पापी, जिसमें कुमति तथा हो व्यापी ।
राघव-भार्या को तू चाहे, अपनी मृत्यु आप बुलाये ।।३४।।
नयन बुरे मुझ मुख पर लाते, क्यों तव कोय नहीं गिर जाते ।
दशरथ सुत-वधू को सताते, प्राण तेरे क्यों न मिट पाते ।।३५।।
वध-वचन जो तूने उच्चारे, मेरे लिये भयंकर भारे ।
कहे वीरता क्यों तू कोरी, जब लाया मुझको कर चोरी ।।३६।।
सिया वचन सुनकर वह खीजा, पसीने से तस तन पसीजा ।
कोपाकुल कर भुजा हिलाता, दान्त पीसता होंठ चबाता ।।३७।।
असुरी गण को वह यह बोला, इसका तन मन करिए पोला ।
डांट डपट कर भीत बनाओ, ज्यों त्यों कर इसको समझाओ ।।३८।।
उलटे सीधे साधन से ही, सीधी करो अब तुम इसे ही ।
मेरे वश में हो यह ज्यों ही, करिए सब उपाय भी त्यों ही ।।३९।।
यह आज्ञा देकर वह क्रोधी, गर्जा बहुत नय-धर्म-विरोधी ।
स्त्री उस समय मालिनी आई, मिली उसको देती बड़ाई ।।४०।।
बोली असुर को वह सजीली, तजिए कृशा विरहिन पीली ।
इच्छारहित को बहुत मनाना, तेज ओज है बल गंवाना ।।४१।।
ऐसे वचनों से बहलाती, ले गई उसे वह हंसाती ।
राजभवन रवि सम चमकीला, उसमें भूप गया हो ढीला ।।४२।।
पीठ असुर ने ज्यों ही फेरी, सिया असुरियों ने आ घेरी ।
कटु कथन करती कल्पाती, क्रोधभरी थीं लपकी आतीं ।।४३।।
भूप की भार्या बन अभागे, कौन कर्म हैं तेरे जागे ।
जो तू राजा के मन भाई, समझ सर्व यह पुण्य-कमाई ।।४४।।
जिस जन ने था शक्र भगाया, जिस ने देव-गण को हराया ।
जग जन नेता जो कहलाया, अब तू उसकी बन जा जाया ।।४५।।

卐राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम卐

जिस ने वश किये पवन पानी, जिसकी महिमा सबने मानी ।
उस से करो न आना कानी, मूढ़े! बन अब उस की रानी ।।४६।।
बातें कही हैं हित-करी जो, दुःखहरी सुखभरी खरी जो ।
यह कहना जो तू न करेगी, बिना आई अवश्य मरेगी ।।४७।।
तज राघव को जो है योगी, धन जन हीन वन दुःख-भोगी ।
निर्वासित मृगछाला धारे, फिरता वन वन मारे मारे ।।४८।।
त्याग करो उसकी अब आशा, मान हर्ष तज सर्व निराशा ।
असुर-पति की हो रहो री, क्यों वृथा ही कष्ट सहो री ।।४६।।
भूप-सा पति पुण्य से पाना, तुझ को प्राप्त हुआ अज्ञाना ।
उस के अन्तःपुर में जाओ, मनचाहे सब ही सुख पाओ ।।५०।।

चौथा सर्ग

*असुरी जन के सुन वचन, सीता भर कर नैन ।
पतिव्रत में रत सती, उनको बोली बैन ।।१।।
तुम सब मिल कर तो मुझे, कहती हो वह बात ।
अधम कर्म जो पाप है, सती-धर्म की घात ।।२।।
आर्य पुत्री तो न कभी, करे असुर का संग ।
जाय जीवन जड़ मूल से, बनें अंग भी भंग ।।३।।
आर्या नारी पतिरता, जाय नहीं पर-पास ।
स्वप्न में भी भूल कर, सहे न होना दास ।।४।।
रामचन्द्र जी है पति, मेरा प्राणाधार ।
उसकी हूँ अनुगामिनी, मैं विधि के अनुसार ।।५।।

* दोहा।

卐राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम卐

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

वन-वासी होवे भले, सुख सम्पत् से हीन ।
धन राज्य से हीन हो, चाहे होवे दीन ।।६।।
मैं उसकी हूँ सहचरी, है वह मेरा नाथ ।
रवि की यथा सुवर्चला, शची शक्र के साथ ।।७।।
ज्यों रोहिणी चन्द्र को, अरुन्धती शुभ भाग ।
चाहे सदा वशिष्ठ को, लिये गाढ़ अनुराग ।।८।।
ऐसा मेरा प्रेम है, पति-चरण में अटूट ।
लोपामुद्रा अगस्त्य से, करती यथा अखूट ।।६।।
यथा सुकन्या च्यवन से, करती प्रेम अपार ।
सावित्री सत्यवान् से, पालती परम प्यार ।।१०।।
त्यों मम प्रीति अनन्य है, राघव में इक तार ।
रात दिवस सब काल में, वच तन सहित विचार ।।११।।
यथा श्रीमती कपिल की, प्रेम पगी थी एक ।
अनन्य प्रेम से रघुपति, त्यों है मेरी टेक ।।१२।।
मदयन्ती सौदास से, जैसा करती नेह ।
त्यों अखण्ड रघुराज से, है मेरा अति स्नेह ।।१३।।
यथा केशिनी सगर की, कही पत्नी शुभरूप ।
राघव मेरे हैं तथा, प्रिय प्राण-स्वरूप ।।१४।।
दमयन्ती नल अनुरता, यथा हुई उपमान ।
त्यों राघव अनुरागिणी, लो तुम मुझको जान ।।१५।।
*सिया के सुन वचन ऐसे, असुरियां क्रुद्धा बड़ीं ।
छुरी कटारी ले सब तब, झुँझलाती हो खड़ीं ।।

* गीतिका।

कह वाक्य कठोर कड़वे, चल कलेजे की कड़ी ।
दान्त होंठ चाटती हुई, कूद सीता पर पड़ीं ।।१६।।
अब इसको मारो काटो, बात जो माने नहीं ।
भून कर खाओ इसे यदि, भूप-पति जाने नहीं ।।
उधेड़ दो अभी चर्म इसका, सुख इसे पाने नहीं ।
चाहे जीना री यदि तू, कर यों बहाने नहीं ।।१७।।
टेढ़े उलटे सब उपाय, वे सभी करने लगीं ।
त्रास मार से भी उस के, प्राण को हरने लगीं ।।
जीभ होठों पर फिरातीं, झाग तो झरने लगीं ।
क्षुधा पीड़ित यथा गधियां, घास हों चरने लगीं ।।१८।।
कड़ी ताड़ना अति तर्जन, लगी करने भयकरी ।
मुंह उठा आती फिर फिर, ज्यों शूकरी वनचरी ।।
दान्त जीभ लात दिखाती, यथा हो बिगड़ी खरी ।
थीं सीता जो भी किंचित्, व्रत धर्म से न टरी ।।१९।।
अति तपाई असुरियों से, सीता तड़पड़ा उठी ।
उनके अत्याचार से वह, तब तो फड़फड़ा उठी ।।
कहती राघव हा! लक्ष्मण, मुख से बड़बड़ा उठी ।
विरह-वेदना बन बिजली, उस में तड़तड़ा उठी ।।२०।।
असुरियों के कर्म कटु को, देख बोली त्रिजटा ।
दो तज री इसे सताना, कहो कुछ न जला कटा ।।
मैंने देखा है सपना, अशुभ सूचक जो घटा ।
नाश लंका असुर जन का, पुण्य पड़दा है फटा ।।२१।।
सहस्र अश्व जुड़े दीखे, मुझे एक विमान में ।
श्वेत वस्त्र माला धारे, रघुपति उसी यान में ।।

लखन उनके साथ दीखा, पूरी आन बान में ।
सीता मिलती रघुपति से, दीखी उसी स्थान में ।।२२।।
पुनः देखा एक हाथी, जो पर्वताकार था ।
दान्त चार थे तो उसके, सहित सब सिंगार था ।।
श्वेत माला वस्त्र पहरे, सानुज जो सवार था ।
भानु सम वह रामचन्द्र, लिए तेज अपार था ।।२३।।
आये सिया पास रघुपति, साथ भाई को लिए ।
दौड़ कर जा मिली सीता, लगी पतिवर के हिये ।।
चढ़े हस्ति पर वे तीनों, दिखाई पुर पर दिये ।
देखे पुनरपि रथारूढ़, पुरी को वश में किये ।।२४।।
विमान पुष्पक पर बैठे, दिशा उत्तर को गये ।
देखे मैंने वे तीनों, वस्त्र पहरे सब नये ।।
हर्ष से भरपूर थे तब, शान्त शोभित सुखमये ।
सर्व सुन्दर लगी सीता, दुःख जिस ने थे सहे ।।२५।।
देखा रावण को मैंने, मुंह सिर मुँडा हुआ ।
लाल कपड़े किये धारण, पीने में था जुड़ा हुआ ।।
तेल पीता नाचता था, भ्रान्त चित्त कुढ़ा हुआ ।
दक्षिण दिशा को चढ़ खर पर, था जाता उड़ा हुआ ।।२६।।
नग्न, बहुत कुवचन कहता, मत्त तो वह था बड़ा ।
गधे ऊपर से गिर कर, भूमि पर वह जा पड़ा ।।
जिस सर में काला कीचड़, था दुर्गन्धित अति सड़ा ।
उसी में तब असुर राजा, कूद करके जा गड़ा ।।२७।।
देखी ऐसी ही मैंने, दशा कुल परिवार की ।
असुर के सब बन्धु सुत की, सचिव जन घरबार की ।।

थे सब कीचड़ में लत पत, यथा होवें नारकी ।
असुर सुरा मग्न हुए तज, चिन्ता धर्माचार की ।।२८।।
पुरी लंका बनी चूर्ण, डूब सागर में गई ।
उसकी वहां रूप रेखा, पीछे कुछ भी न रही ।।
स्वप्न ऐसा देख तभी, मुझे सूझी यह नई ।
नाश होगा असुर-पुर का, राघव हस्त से सही ।।२९।।
इस लिए तुम तजो तर्जन, और करनी ताड़ना ।
रघुराज की पत्नी को यों, उचित न लगे झाड़ना ।।
हमें चाहिये दें धैर्य, इसे शान्ति उभाड़ना ।
नहीं तो रघुराज को पुर, होगा ही उखाड़ना ।।३०।।
सती सुन्दर शुचि सुशीला, सरला सच्ची है भली ।
पति-व्रत से राई भर, यह है जो नहीं टली ।।
लोभ-लालच में फंसी न, धर्म धृति से न चली ।
अचल-चूल सम है अविचल, चित्त, चतुरा का बली ।।३१।।
सर्व साधन से सभी तुम, अब इसे सुखिया करो ।
न सताओ दो आदर, रामचन्द्र से डरो ।।
इसे पूजा नमस्कार से, अच्छे वर फिर तो वरो ।
व्यर्थ बाधा भय दे कर, कुभार भीतर न भरो ।।३२।।
कमल तुल्य विशाल इसका, नयन फरका वाम है ।
इसकी फरकती वाम भुज, सिद्धि-सूचक काम है ।।
फरक रही बाईं जंघा, बहुत रहित विराम है ।
ऐसे लक्षण चिन्ह का ही, शकुन शुभतर नाम है ।।३३।।
घोंसले में रह वह पक्षी, सुर मृदु है बोलता ।
यहां आंगन वाटिका में, मधुरता है घोलता ।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

इसी से है अनुमान तो, भेद भावी खोलता ।
भला भविष्य भगवती का, पास ही है डोलता ।।३४।।
त्रिजटा के कथन से कुछ, असुरियाँ सकुचा गईं ।
रात भर जगते हुए भी, अधिक कर उकता गईं ।।
तन्द्रा-वश आँखें उनकी, गाढ़ झपकी खा गईं ।
मद्य-मत्ता मूर्छिता मन, नींद वश में आ गईं ।।३५।।
खड़ी सीता उस समय थी, शिंशपा तरु के तले ।
नयन उसके बह रहे थे, प्राण जाते थे चले ।।
चिता चिन्ता पर चढ़े सब, अंग जाते थे जले ।
पकड़शाखअशोककुसुमित, भाव कहती थी भले ।।३६।।

पांचवाँ सर्ग

* [अहो पतिवर! बली देवर!, कहाँ तुम आज हो मेरे ।
पड़ी हूं पर कुपिंजर में, विकट हैं अति बुरे घेरे ।।
तर्जन त्रास ताड़ना है, तपी जाती उत्तापों से ।
पराये पुरुष के पंजे, पड़ी पुराणे पापों से ।।१।।
कहूं किसको कहानी मैं, करुण क्रन्दन करूँ किस पै ।
कलेजा कांप जावेगा, कर्ण कर क्रूर का इस पै ।।
सताती असुरियां मुझको, छुरी तीखी कटारी ले ।
खड्ग खंजर दिखातीं हैं, बड़े हथियार भारी ले ।।२।।
असुरी मिली चबाने को, चली दुष्टा वे आती हैं ।
दहलाती दुःख देती हैं, दशन दलने दिखाती हैं ।।

* विधाता।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

निश दिन चैन नहीं मिलता, नयनों नींद नहीं होती ।
निरन्तर हनन काटन सुन, सिर धुन रहती हूं रोती ।।३।।
बरसती कु-वचन विष वर्षा, बदन बादल विषैलों से ।
विषम बहुते बुरे वर्णन, बनते मुखड़ों मैलों से ।।
पर-वशा पापिनी पतिता, परायण अपर पुरुषों से ।
मुझे वे पाप में प्रेरित, करें अपलाप परुषों से ।।४।।
कुटिल कटु कपट से कुटनी, मुझे ले कूट टोले में ।
चल चालें कुचिन्ह चाहें, लगें मम चरित चोले में ।।
वध के वचन जो बोले, असुर ने बिगड़ इस बारी ।
बनें न बात अब उसकी, विपद् बाधा बड़ी भारी ।।५।।
यदि नहीं आप आ सकते, यहाँ, प्रभु! दो मासों में ।
मरूंगी तो पते! तेरा, सिमरती नाम सांसों में ।।
समझो निश्चय से यह तो, सती का सत्य पालूंगी ।
गले को फांस डालूंगी, अथवा विष को खा लूंगी ।।६।।
शरणागत बनी रहूं मैं, जगत् सब तीन कालों में ।
हनन हो जाय चाहे तन, पिरोया जाय भालों में ।।
पुत्री शुभ वंश उत्तम की, मरूँ पति-नाम को जपती ।
कुल को लगे नहीं कालिख, जलूं चाहे आग पर तपती ।।७।।
रहे दोनों जगत् में तो, मुझे तेरा सहारा ही ।
यही है कामना मेरी, भले हो कष्ट भारा ही ।।
न टूटे यह कभी जोड़ी, मिले रहें भानु-ज्योति से ।
गुणी गुण, वचनों अर्थों वत्, हम हों अखण्ड मोती से ।।८।।
चित्त के चारु चन्द्र हे, चक्षु के चमकते तारे ।
दिल के दिल मृदुल मेरे, प्राण के प्राण अति प्यारे ।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

देह के दीपते दीवे, दिव्य देवी द्युति धारे ।
जगत् में मीत तुम मेरे, मिलो रघुराज रखवारे ।।९।।
कभी तो दिन फिरेंगे शुभ, घड़ी आ पुण्य की मुझको ।
छुड़ा पिशाच अधम नर से, मिला देगी पते ! तुझको ।।
मधुर मुख निरख कर मैं तो, गले में डाल कर बाहें ।
अश्रु से सींच कर छाती, भरूँगी फिर बड़ी आहें ।।१०।।
विरह की हिचकियां लेती, रह रह रुकती रो रो कर ।
करूंगी देह दिल शीतल, पति का मुखड़ा धो धो कर ।।
विरह की शमन कर ज्वाला, झुकूंगी चारु चरणों पर ।
समर्पण सर्व कर दूंगी, नाथ की शान्त शरणों पर] ।।११।।
[अरे पंछी उड़ोगे कब, हुआ जाता सबेरा है ।
असुर के जाल जादू ने, तुम्हें क्या आज घेरा है ।।१२।।
सजग हो सुर सुरीले से, सहित सब सरस सम्बोधन ।
मिलो साजन सजी सजनी, हिलो जा रहा अन्धेरा है ।।१३।।
समुद्र पार कर जाईयो, गिरी वन लांघते आगे ।
उतरना सहज से तुम ने, जहां प्रिय का डेरा है ।।१४।।
चुगियो प्रचुर तुम चोगा, चपल चंचल चला चूंचें ।
बहुत चूं चीं मचाना मत, समझ राघव बसेरा है ।।१५।।
पूरी तृप्ति पाकर फिर, परस्पर प्रेम से मिलते ।
इधर संकेत कर कहना, बना जो हाल मेरा है ।।१६।।
उड़उड़कर यह दिशा दक्षिण, दिखाना देव मेरे को ।
शकुन शकुनी शुभे! सूचन, करना फेरा तेरा है] ।।१७।।
[अजी तारो निहारो तो, कहां राघव सुहाते हैं ।
सुचारु चन्द्र सम चमकें, चक्षु चित्त को लुभाते हैं ।।१८।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

चमा-चम चमकते फिरना, चपलावत् चालें चंचल चल ।
चले जाना वहां छुपते, जहां वे दिन बिताते हैं ।।१९।।
पड़ना टूट दिशा इस को, कर संकेत मेरी ओर ।
बताना टूटता दिल है, असुर आ जब सताते हैं] ।।२०।।
[शशि शोभित शुचि शीतल, रश्मि शुभ शान्त से जाना ।
निरखना ओट कर बादल, चमकता बदल कर बाना ।।२१।।
अपने आप से प्रियतम, अतिशय सौम्य सुन्दर जो ।
निरख रघुराज-मुखमण्डल, सुधा रस-स्वाद को पाना ।।२२।।
कलाधर में कला लय कर, विरह का चिन्ह दिल में जो ।
उसे अंकित किए निज में, यहां फिर लौट कर आना] ।।२३।।
[उषा दौड़ी चली जाओ, अली! लीला ललित वाली ।
लखियो फैल, उसे नभ में, मथा जिसने बली बाली ।।२४।।
गुलाबी वेश कर रचना, सरसतर रास उस वन में ।
कर उज्ज्वल शिखर गुहा को, निशा कर नाश भी काली ।।२५।।
सिमट कर घुस गुफा उस में, कर पहचान चिन्ह इन से ।
पड़े होंगे पड़े पीले, शरत् में पत्र ज्यों डाली ।।२६।।
सुनहली लालिमा लाना, कमल दल नयन पलकों पर ।
जगेंगे जाप करने को, सच्चे शुचि शील शुभशाली ।।२७।।
लखियो ध्यान-मुद्रा में, मग्न उस महा मुनिवर को ।
मधुर विधु-वदन अति फीका, अरसता तन की निराली ।।२८।।
धुले कोमल कपोलों पर, अड़ी! गुलाल हलका-सा ।
लपक कर छिड़क तो देना, रहे न पीलापन खाली] ।।२९।।
[सुगन्धित मन्द शीतल शुभ, पवन! यह मानियो कहना ।
बिजली वेग बड़ा बन कर, उत्तर ओर अभी बहना ।।३०।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

लिटे होंगे गुफा में वे, उष्णतर सांस अति लेते ।
स्वप्न-सुलाप कर इस से, सहते असह्य सब सहना ।।३१।।
विरह से तप रहे तन को, हलके ठण्डे झोकों से ।
सरसता ओज जीवन दे, हित से हिलते ही रहना ।।३२।।
विजय की वायु आवेगी, विघ्न बाधा बड़ी वध कर ।
बताते उस समय उन का, हिलाना नयन भी दहिना] ।।३३।।
बिलखती देख सीता यों, बहुत व्याकुल हुआ वानर ।
कहा उस ने तभी मन में, अद्भुत यह तो नारी है ।।३४।।
सुन कर वध की वाणी को, हिली न यह तो कुछ भी तब ।
सती सच्ची सुपथ सत्य का, सर्व स्वरूप सारी है ।।३५।।
धर्म से गिर नहीं पाई, वचन वाणों से विन्ध कर भी ।
बड़े दिल मन कलेजे की, अनुपमा यह निहारी है ।।३६।।
विधि से परिचय मैं दे कर, मिलूं इस से अभी तो ही ।
सिद्ध कार्य करे अपना, कुशल वह कर्मचारी है ।।३७।।

छठा सर्ग

*छिपा हुआ हनुमान, उसी शीशम तरु पर तब ।
बोला बहुत बखान, राघव जी के वंश को ।।१।।
दशरथ राजा एक, धर्म धृति की था धुरा ।
कर यज्ञ दान अनेक, पुजा जगत् में वह बहुत ।।२।।
शूर वीर नर धीर, शत्रु-दमन में अति निपुण ।
उसका सुत गम्भीर, रामचन्द्र विख्यात है ।।३।।

* सोरठा।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

पितृ-वचन को मान, लक्ष्मण सीता सहित वे ।
वन में, कर प्रस्थान, आये ले वनवास को ।।४।।
ऋषि मुनि साधु सन्त, पालन करते वे रहे ।
अनेक वर्ष पर्यन्त, उसने तप जप सब किये ।।५।।
पूर्ण साधन साध, करके तपस्या घोर तर ।
सेवा से आराध, लिये उसने मुनिजन सब ।।६।।
खर आदिक खल लोग, बड़े विदेशी दुष्ट दल ।
भारत भू पर रोग, बन, खाते जन मांस को ।।७।।
ऋषि जनों को त्रास, देते वे दिन रात थे ।
करते जाते वास, भारत में बल छल लिये ।।८।।
उनका मार्ग रोक, बल से राघव ने दिया ।
हो हर्षित सब लोक, उसके अनुयायी बने ।।९।।
असुरों ने चल चाल, छल से सीता-हरण कर ।
रघुपति दीन-दयाल, दुःखी किया अन्याय से ।।१०।।
करते बहुत विलाप, वन वन में तो वे फिरे ।
सहित सुग्रीव-मिलाप, सेनाबल उनका बढ़ा ।।११।।
करते अनुसन्धान, हैं वानर फिर सब दिश ।
सागर लाँघ महान, मैं आया हूँ खोज को ।।१२।।
गुणगण कहे विशेष, राघव ने सिया के तब ।
वे तो सभी अशेष, इस में दीख रहे मुझे ।।१३।।
ऐसे वचन उच्चार, मौन हुआ नरराज वह ।
सीता हर्ष अपार, पाया पति की सुन कथा ।।१४।।
इधर उधर वह ताक्, रही थी कहां कौन है? ।
पर खड़ी थी अवाक्, देख न मानव को वहां ।।१५।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

ऊपर दृष्टि डाल, उसने देखा वीर नर ।
मान असुर की चाल, भद्रा भय-भीत हो तभी ।।१६।।
बोली मन में आप, गया ब्राह्मण वेश में ।
वही रूप रच पाप, है आया क्या अब यहां ।।१७।।
अथवा सपने बीच, मैं सब कुछ हूँ देखती ।
असुर अधम नर नीच, छल माया है रच रहा ।।१८।।
ऐसे लिये विचार, रोदन वह करने लगी ।
विनय सहित नमस्कार, कर उतरा हनुमान् तब ।।१९।।
*बोला तब हनुमान् तथा ही, विनयवान् जन कहे यथा ही ।
राघव राजा जी की रानी, गुण लक्षण से दीखो भवानी ।।२०।।
रामचन्द्र की पत्नी प्यारी, हो मूर्ति कह रही तुम्हारी ।
विरह वेदना सहित सुशीले!, अंग हुए हैं तेरे पीले ।।२१।।
अथवा अन्य विपद् की मारी, हो कोई तुम अति दुखियारी ।
कष्ट-कथा कड़वी हो कैसी, करना कथन हुई हो जैसी ।।२२।।
वानर वाक्य सुन वैदेही, बोली वचन धृति-धर के ही ।
जनक-सुता मैं ही हूं सीता, दशरथ की सुत-वधू विनीता ।।२३।।
रामचन्द्र की पत्नी जानो, अनुव्रता निश्चय कर मानो ।
रामचन्द्र सब ज्ञान का ज्ञाता, पति मेरा है आर्या-त्राता ।।२४।।
बारह वर्ष तक रहे गृही, दम्पति हम मिल सुदृढ़ स्नेही ।
पीछे घर पर विपदा आई, विकट बात बनी दुःखदाई ।।२५।।
बना वनों में उससे आना, वन वन फिरना कष्ट उठाना ।
ज्ञात कथा है तुम्हें हमारी, है वही जो तुमने उच्चारी ।।२६।।

---

* चौपाई।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

तब ही उसने दी अंगूठी, अंकित राघव नाम, अनूठी।
सिया को वह विश्वास दिलाता, बोला रघुपति के गुण गाता।।

हाथ जोड़ वह बोला माता!, राघव सकुशल हैं सह भ्राता ।
उनकी आज्ञा से हूँ आया, मैं सन्देश प्रभु का लाया ।।२७।।
मैं हूं राघव का अनुगामी, वे हैं मेरे गुरुवर स्वामी ।
रघुपति-चरण-शरण पै वारा, मैंने मन तन अपना सारा ।।२८।।
पूछा कुशल उन्होंने तेरा, समझो सत्य कथन सब मेरा ।
सजल नयन होकर रघुराई, कहते कुशल जनक की जाई ।।२६।।
सच्चा सेवक सदा सहाई, राघव का सुहृद् लघु भाई ।
बन्धु-वत्सल बन्धुसेवी, नमस्कार कहता था देवी! ।।३०।।
समाचार सुन सिया हर्षाई, बोली, यह उक्ति सच्ची गाई ।
चाहे वर्ष शतक भी बीते, पाते सुख जो जन हों जीते ।।३१।।
[जगत् में होते भक्त बहुतेरे, कोप कपट कलि मल के डेरे ।
दम्भ आडम्बर रच दिखाते, वेश केश बहु रूप बनाते ।।३२।।
नव नव रचते मार्ग माया, फिरते पाप कर्म की काया ।
पर जो होते भक्त सियाने, कर्म गुणों से जाते जाने] ।।३३।।
[जो चाहे जन जी को जाना, भीतरी भाव की तह पाना ।
बयन सैन वदन भाव-भंगी, लख समझे व्यक्ति बुरी चंगी] ।।३४।।
महा मधुर मुख मण्डल देखा, हाव भाव चिन्ह चक्र रेखा ।
वचन ढंग सब सरल सुहाना, सिया ने वह सच्चा ही माना ।।३५।।
बोली वह, कह वत्स! कहानी, राघव की अमृत बरसानी ।
कैसे वानर वंशी नेता, मिले उन्हें सब जान विजेता? ।।३६।।
अथ से इति तक वर्णन सारा, विरह-कष्ट रघुपति का भारा ।
यथा सन्धि कर बाली मारा, हनुमान् ने सब ही उच्चारा ।।३७।।
तब ही उसने दी अंगूठी, अंकित राघव नाम, अनूठी ।
सिया को वह विश्वास दिलाता, बोला रघुपति के गुण गाता ।।३८।।

सीते ! सुनो सन्देश प्यारा, धृति शान्ति सुख देने हारा ।
रामचन्द्र हैं तुझे ध्याते, उठते बैठे आते जाते ।।३६।।
पत्नी-विरह की करते बातें, बीतें सब दिन सब ही रातें ।
तेरे गुण-गण गाते गाते, वे थकित नहीं होने पाते ।।४०।।
देश काल वे सभी भुलाते, जब तव वर्णन कथा सुनाते ।
फिर फिर कथा वही दुहराते, गद् गद् कहते ही हो आते ।।४१।।
तव वर्णन में उनकी बानी, बहती यथा वर्षा का पानी ।
आंखों पर बादल आ जाते, टप टप विरह वारि बरसाते ।।४२।।
अधिक और क्या कहिए सीते!, है आश्चर्य राघव हैं जीते ।
खाते भोजन नीरस रूखे, उपवासों से जाते सूखे ।।४३।।
दो दिन का अन्तर कर खाते, फलाहार पर काल बिताते ।
सर्व स्वाद तज रहते ऐसे, घोर तपोधन होते जैसे ।।४४।।
दंश सर्प मच्छर हो कीड़ा, काटे तन को देवे पीड़ा ।
तो भी उसको न हैं हटाते, दाह जलन पर चित्त न लाते ।।४५।।
विरह दाह दिन दिन है दूना, अन्य दुःख उन्हें लगता ऊना ।
सुध बुध निज को सर्व बिसारे, चिन्तन करते कष्ट तुम्हारे ।।४६।।
आंखें रहते वे अधमींची, ग्रीवा दृष्टि करके नीची ।
ध्यान लीन रहते सब वेला, चाहते रहें सदा अकेला ।।४७।।
चिन्ता मग्न अल्पतर भोगी, विरह-वेदना मथित वियोगी ।
रहते अनमने सदा ही, हर्षित होते नहीं कदा ही ।।४८।।
रातों नींद न उनको आती, जगते घड़ियां बीती जाती ।
लगे आंख जभी झुंझलाते, हा! सीते! कह प्रभु चिल्लाते ।।४६।।
देखते वस्तु अद्भुत जो ही, पुष्प लता वन पर्वत को ही ।
सीता! सीता! कह वनवासी, भरते दीर्घ सांस उदासी ।।५०।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

चलते फिरते वे बहु बारी, सीते! स्मृति करते तुम्हारी ।
जभी देखो वे तुझे ध्याते, फिर फिर तेरी कथा चलाते ।।५१।।
सन्धि मिलाप को हैं बढ़ाते, तुझे मिलें यह यत्न रचाते ।
यद्यपि हैं वे अति ही सोगी, तेरे लिये हैं अति उद्योगी ।।५२।।
निश्चय जानो जनकदुलारी, राघव लेकर सेना भारी ।
शीघ्रतर सब जगसुखकारी, आ काटेंगे विपद् तिहारी ।।५३।।
रावण भूप जो अत्याचारी, कपट क्रूरता छल-बलधारी ।
खण्ड खण्ड होगा पाखण्डी, पाप की झंडी घोर घमण्डी ।।५४।।
मैं जाकर हूँ उन्हें सुनाता, दुःख दशा तेरी बतलाता ।
वृत्त सुनेंगे वे जभी ही, इधर दौड़ पड़ेंगे तभी ही ।।५५।।
शान्त रहो धैर्य को धारो, चिन्ता चित्त से सर्व निवारो ।
सहित लखन सुग्रीव हैं आते, असुर हनन कर तुझे छुड़ाते ।।५६।।

सातवाँ सर्ग

*राघव का सन्देश सुन, सीता धैर्य धार ।
बोली, रघुपति आ तुरत, मेरा करें उद्धार ।।१।।
कहना उनको यह कथा, ठीक ठीक हे वीर ।
असुर-कष्ट से हो रहा, पीला यथा शरीर ।।२।।
मैं दिन ज्यों हूँ काटती, तड़प तड़प दिन-रात ।
कहना राघव को सभी, आदि-अन्त तक बात ।।३।।
कैसे दिन हैं बीतते, मेरे असुरों बीच ।
कैसे घोर कठोर कटु, हैं ये जन अति नीच ।।४।।

* दोहा।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

मिथ्या-माया महा मोह, रचकर असुर नरेश ।
कैसे कड़वे दे रहा, मुझको अत्यन्त क्लेश ।।५।।
दो मासों के बीच यदि, हुई न मेरी त्राण ।
असुर के पाचक मिल तब, लेंगे मेरे प्राण ।।६।।
टुकड़े मेरी देह के, करके सर्व तयार ।
देंगे क्रूर नरेश को, करने को आहार ।।७।।
भुने हुये मम अंग का, करके वह उपहार ।
होगा शान्त कु-कर्मी नर, लिए तृप्ति अपार ।।८।।
कहियो मेरे नाथ को, जाकर तुम हनुमान् ।
खण्ड खण्ड होऊँ भले, पर दूँ लाज न आन ।।६।।
पातिव्रत स्वधर्म पर, अर्पित कर जी जान ।
सुदृढ़ आर्य चरित में, मैं हूँ मेरु समान ।।१०।।
सत्य सनातन धर्म में, हूँ मैं अचल अडोल ।
आश्रय तेरे नाम का, है मुझ को अनमोल ।।११।।
चरण-शरण रघुनाथ की, एक टेक है ओट ।
उस बल से हूँ सह रही, मैं कु-काल की चोट ।।१२।।
मन वच काया कर्म से, तुझ में हूँ लवलीन ।
जगत् नाथ रघुनाथ जी, पर हूँ तुझ से हीन ।।१३।।
सुग्रीव लक्ष्मण वीर सह, सेना लेकर साथ ।
मुझे छुड़ाना बन्ध से, शीघ्र आ रघुनाथ ।।१४।।
सीता का सन्देश सुन, बोला वानर-वीर ।
आश्वासन दे कर उसे, नयनों भरकर नीर ।।१५।।
माता धैर्य धारिए, सुनकर तव सन्देश ।
सहित अनुज रघुनाथ में, उमड़ेगा आवेश ।।१६।।

महामन्यु मन में लिये, वे बल-मूर्तिमान् ।
आवेंगे अति वेग से, अति शीघ्र कर यान ।।१७।।
पर यदि चाहो देवि! तुम, पाना दुःख से पार ।
दास पीठ पर हूजिए, अभी तुरन्त सवार ।।१८।।
ले जाऊँगा मैं तुझे, बल से, राघव-पास !
असुर-संघ को कर मथन, दे कर अति भय त्रास ।।१६।।
मेरे पथ को जन नहीं, सकता कोई रोक ।
मेरी गति मति शक्ति को, सके न कोई टोक ।।२०।।
बनें बहुत बाधा विघ्न, विषम बहुत वन बाट ।
विकट विपद् मग में पड़े, तो भी दूँगा काट ।।२१।।
चिन्ता सर्व निवार कर, मन को कर के ठीक ।
बैठो सेवक-पीठ पर, माता हो निर्भीक ।।२२।।
*सुन यह वचन सीता हर्षाई, उसको देती बहुत बड़ाई ।
बोली, सुन्दर सौम्य प्यारे!, सच्चे वचन हैं सर्व तुम्हारे ।।२३।।
हो समर्थ महा शक्ति शाली, रखते दैवी देह निराली ।
तेज अतुल बल देखा जो ही, उस से सत्य है कहो सो ही ।।२४।।
वायु वेगवत् आते जाते, श्रान्त नहीं तुम होने पाते ।
जिस स्थल में विचार जमाओ, जा सकते हो जब ही चाहो ।।२५।।
मुझे पीठ पर लेकर जाना, सागर पार कठिन है माना ।
उसमें गिर कर मर यदि जाऊँ, पति दर्शन मैं कैसे पाऊँ ।।२६।।
वहां डूब हम दोनों जायें, महामत्स्य यदि हम को खायें ।
राघव को जा कौन बताये, कहो कौन संदेश सुनाये? ।।२७।।

---

* चौपाई।

समाचार बिन तब रघुराई, होंगे दुःखी सहित लघु भाई ।
मीन दीन ज्यों हो जल-हीना, ऐसा होगा उनका जीना ।।२८।।
यह अपराध नहीं कर पाऊँ, मैं चाहे तन भस्म बनाऊँ ।
कारण मुख्य हूँ अब सुनाती, जिससे मैं तव साथ न जाती ।।२९।।
उचित नहीं है जाना ऐसे, कहते हो तुम मुझको जैसे ।
इच्छा से पर पुरुष को छूना, है बनाना धर्म को ऊना ।।३०।।
आर्या नारी सती सुशीला, करती नहीं व्रत-बन्धन ढीला ।
अपर पुरुष के संग न जाती, पूर्ण प्रेम पति का निभाती ।।३१।।
[जाति कुल की रीति है जो, उचित यही है पाले सो सो ।
स्व-वश नहीं मर्यादा तोड़े, संकट में भी धर्म न छोड़े] ।।३२।।
प्रेम भक्ति रघुपति में मेरी, रही अखण्ड सदा सब बेरी ।
चाहे काया होवे ढेरी, पर न छूंगी मैं देह तेरी ।।३३।।
रामचन्द्र की पत्नी ऐसी, मैं हूँ प्रभा सूर्य की जैसी ।
अपर पुरुष-स्पर्श का होना, इच्छा से है धर्म का खोना ।।३४।।
राघव आयें मुझे छुड़ाएँ, शक्ति से संग अपने ले जाएँ ।
योग्य यही रीति है मानी, वीरोचित भी यही बखानी ।।३५।।
सिया-कथन सुन कर सुखदायी, दूत चतुर राघव अनुयायी ।
रोमांचित हो विस्मय से ही, बोला वचन उचित नय के ही ।।३६।।
है समुचित जो कहो भवानी, यही धर्म कहते मुनि ज्ञानी ।
राघव-पत्नी को यह सुहाता, जो कुछ कहा आपने माता ।।३७।।
अन्य कौन यह बोले बानी, सती धर्म पतिव्रत दर्शानी ।
देखा सुना सर्व जो मैंने, दिया सन्देश जो देवी तू ने ।।३८।।
जा कर पास प्रभु के सो भी, कह दूँगा सब बीता जो भी ।
दुःख दशा कर वर्णन सारी, कह दूँगा तव विपदा भारी ।।३९।।

ले चलने की बात सुनाते, अपने बल की बात बताते ।
मैंने गर्व न की चतुराई, तेरा हित था मन में माई ।।४०।।
दुस्तर सागर तरना खारा, लंका-गढ़ का देख पसारा ।
प्रिय-करण रघुपति का धारे, मैंने थे वे वचन उच्चारे ।।४१।।
देना देवी! दिव्य निशानी, समझे सत्य जिसे वरदानी ।
दे कर परिचय परम सुधी से, मिलूँ कहूँ सब रघुपति जी से ।।४२।।
वस्त्र में से उसने निकाला, चूड़ामणि अति आभा वाला ।
हनुमान् को सिया देते, बोली वचन हिया हर लेते ।।४३।।
कहना निज गुरुवर से गाथा, मैं पड़ी हूं ज्यों हो अनाथा ।
नाथ! हाथ लघु-साथ बढ़ाना, अपनी को रघुनाथ बचाना ।।४४।।
दीन दुःखी पर दया दिखलाई, देव दलित के हुए सहाई ।
तुमने पापी पतित उद्धारे, दुष्ट दस्यु दुर्जन भी तारे ।।४५।।
करुणा-कर को आज पसारो, अपनी को विपदा से तारो ।
लाज शर्म है हाथ तुम्हारे, सर्व-नाथ रघुनाथ हमारे ।।४६।।
नयन-नीर छम छम बरसाती, बार बार थी रुकती जाती ।
उसने स्वस्ति सहित विदाई, दी तब उसे यथा है गाई ।।४७।।
उसे धृति दे कार्यकारी, चलने की कर सर्व तयारी ।
नमस्कार सह मणि को ले के, सीता को प्रदक्षिणा दे के ।।४८।।
यही धार कुछ करके जाऊँ, असुर शक्ति-भेदों को पाऊँ ।
चला वहाँ से भू कंपाता, दूत-काम की मुहर लगाता ।।४९।।
पुष्प-वाटिका पथ में आई, कुचल मसल कर सर्व मिटाई ।
उसने कदली कुँज उजाड़ा, बेल लता को बहुत उखाड़ा ।।५०।।
मर्दन करता था प्रमाथी, वन को मत्त करे ज्यों हाथी ।
झंझावात वनों में ज्यों ही, वनिका में फिरता वह त्यों ही ।।५१।।

卐राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम卐

तोड़े उसने जल-फंवारे, कूप जलाशयों के किनारे ।
वनिता-वन मर्दन कर डारा, रमण-स्थान को बहुत बिगाड़ा ।।५२।।
उड़े तब सभी पक्षी चिल्लाते, नभ मण्डल में चक्र लगाते ।
दावानल से विपिन्न यथा ही, बन रही वनिका थी तथा ही ।।५३।।
पवन-पुत्र उत्पात मचाता, अस्त व्यस्त उपवन बनाता ।
द्वार-तोरण पर आ विराजा, समर-कामना से ज्यों राजा ।।५४।।
[वाद कलह से बढ़े लड़ाई, छेड़ छाड़ से उठे भिड़ाई ।
वेणु वन को है चिंगारी, मार हानि वा देना गारी] ।।५५।।
[बली वीर पर वार चलाना, सुप्त-सिंह है आप जगाना ।
हाथ सर्प-बिम्बी में देना, मग में मृत्यु मोल है लेना ।।५६।।
बुद्धि काम में जो जन लाते, पहले पूरा वार चलाते ।
बनते बहुधा वही विजेता, साहसवान् जनों के नेता] ।।५७।।
पक्षी नाद सुन असुरी सोतीं, जगीं सर्व तब व्याकुल होतीं ।
नष्ट-भ्रष्ट लख कर तरु माला, तितर बितर कुसुमों की शाला ।।५८।।
इधर उधर अति दौड़ लगातीं, लगी देखनें अधिक चिल्लातीं ।
तोरण पर लख वीर विरोधी, महाकाय मार्ग अवरोधी ।।५९।।
अति भय-भीत हुई घबराईं, दौड़ भाग रावण पै आईं ।
बोलीं, राजन्! पुरुष निराला, वन में हो ज्यों गज मतवाला ।।६०।।
बेल बूटे सब उसने उखाड़े, कोमल कुसुम क्यारे उजाड़े ।
वनिता उपवन कर के सूना, वह तो ऐंठ रहा है दूना ।।६१।।
है कौन वह कहां से आया, नहीं सिया ने भेद बताया ।
वह है दूत किसी का शूरा, निर्भय बल कल छल में पूरा ।।६२।।

卐राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम卐

आठवाँ सर्ग

*असुरी जन के सुन कथन, रावण कर अति क्रोध ।
बोला वह नर कौन है, जिसने किया विरोध? ।।१।।
ध्वंस वाटिका कर सभी, किसने मांगा काल ।
जाओ किंकर जन अभी, दो तस प्राण निकाल ।।२।।
लेकर मुद्गर कूट सब, दौड़े वे विकराल ।
व्याकुल बहु विष वैर में, विषम विषैले व्याल ।।३।।
होंठ चाबते क्रोध में, पीस रहे थे दान्त ।
त्यौड़ी भौंहें तान कर, आये बान्धे पान्त ।।४।।
शाण-शाणित-कु-बाण ले, भाले खड्ग कटार ।
ले टूटे हनुमान् पर, देने को अति मार ।।५।।
घोर गर्जना साथ तब, बोले श्री हनुमान् ।
जय हो राघवलखन की, जो हैं पुरुष महान् ।।६।।
सुग्रीव भूप की हो जय, रघुपति जी का दास ।
हनुमान् मैं हूँ यह, तुम्हें रहा दे त्रास ।।७।।
पवन-पुत्र मैं आज तो, मथ असुरों का मान ।
शूर वीर नर हनन कर, वन-पुर की कर हान ।।८।।
नमस्कार कर सिया को, सर्व कामना साध ।
तुम असुरों के देखते, जाता हूँ निर्बाध ।।९।।
ऐसी कर के घोषणा, लेकर परिधि विशेष ।
उन को श्री हनुमान् जी, करने लगे निश्शेष ।।१०।।

* दोहा।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

मूसल से मर्दन किये, उस ने वे ज्यों धान ।
बहुत मरे कुछ भाग कर, गये असुर-पति-स्थान ।।११।।
दे दुहाई दैत्य वे, बोले हे नरराज ।
नौकर गृह उद्यान के, हने गए हैं आज ।।१२।।
उस ने पालक बाग के, सर्व दिए हैं पीट ।
मत्त हस्ति कुचले यथा, मेंडक मूषक कीट ।।१३।।
यह सुन कर अति कोप कर, उसने दलपति एक ।
जम्बुमाली भेजा तब, देकर वीर अनेक ।।१४।।
प्रहस्त सुत दौड़ा तब, लेकर सब हथियार ।
देखा उसने दूत को, बैठा हुआ तयार ।।१५।।
रथ में से उस असुर ने, किये अधिक प्रहार ।
अर्धचन्द्राकार सभी, ले कर सर दुःखकार ।।१६।।
लगा एक हनुमान् के, मुख पर, करता पीर ।
पांच पांच दो भुजा पर, एक भाल पर तीर ।।१७।।
मर्म भेदी पैने अति, खा कर भी वे बाण ।
हनुमान् रहा धृति में, अविचल अचल समान ।।१८।।
उसके मुख पर रक्त के, बने बिन्दु ज्यों लाल ।
शिला पर बीरबहूटियां, बैठें डेरा डाल ।।१६।।
समर-कुशल हनुमान् ने, किया शिला का वार ।
सैनिक जम्बुमाली पर, बल से तो इक बार ।।२०।।
शाल-डाल विशाल लिये, आसुर-दल के अंग ।
बिजलीवत् बल वेग से, किये वीर ने भंग ।।२१।।
क्रोधी जम्बुमाली ने, विद्ध किया वह वीर ।
टेसू फूले सम बना, उसका सर्व शरीर ।।२२।।

हनुमान् ने आगे बढ़, मूसल चारों ओर ।
फेरा सहित उतावली, कर गर्जन अति घोर ।।२३।।
विद्युत् पात समान तब, मूसल ने कर चूर ।
जम्बूमाली सहित असुर, फेंके इत उत दूर ।।२४।।
सैनिक-दल सब कर मथन, बोला वह बलवान् ।
रामचन्द्र की जय हो, वह है शक्ति निधान ।।२५।।
दलपति सह दल-दलन सुन, दानव-देश नरेश ।
तिरेर दोनों नयन-दल, बोला ला आवेश ।।२६।।
जायें अभी तुरन्त ही, सचिवों के सुत सात ।
हड्डी पसली तोड़ सर्व, उसकी कर दें घात ।।२७।।
मंत्री पुत्र सशस्त्र सब, आ पड़े एक साथ ।
अग्र बढ़ा हनुमान् भी, सिमरन कर रघुनाथ ।।२८।।
समर में सचिवों के सुत, मार मुष्टि निज लात ।
थप्पड़ मूसल से हनन, उसने किये निपात ।।२९।।
उन सातों की हार सुन, रावण विस्मय मान ।
सेना-नायक पांच को, बोला जान निदान ।।३०।।
जाओ दल बल साथ ले, लाओ पकड़ उद्दण्ड ।
जो बन घोर घमण्डघर, करता घटना काण्ड ।।३१।।
उसका वध करना नहीं, हो सभी सावधान ।
पकड़ बान्धकर लाइए, असुरों की रख आन ।।३२।।
जैसे भूखे भेड़िए, पड़ें हिरण पर टूट ।
दौड़ें तस्कर धनिक पर, लेने को सब लूट ।।३३।।
ऐसे वे हनुमान् पर, करते मारो मार ।
हाथी घोड़े रथों पर, आये, हुए सवार ।।३४।।

दाव पेंच के समर में, विस्मय-कारी खेल ।
खेला वानरराज ने, करके धक्कम पेल ।।३५।।
बिजली बन वह वेग से, पड़ता बल से कौन्ध ।
चक्कर चारों ओर दे, देता अरिदल रौन्ध ।।३६।।
अद्भुत कौशल कर्म से, असुर-गणों को घेर ।
मार पीट हन मसल कर, उस ने दिया खदेड़ ।।३७।।
चमके श्री हनुमान् जी, बड़ी विजय कर लाभ ।
रवि ज्यों बादल दूर कर, सहित सुनहली आभ ।।३८।।
जय जय हो रघुवीर की, बोला वह कर नाद ।
असुर-संघ के चित्त को, देता हुआ विषाद ।।३९।।
*दूत जानकर अति प्रतापी, रावण-मन में चिन्ता व्यापी ।
इन्द्रजित को उस ने भेजा, कहा सेना साथ भी ले जा ।।४०।।
शूर वीर हो बहुत विजेता, असुर दलों के मुखिया नेता ।
जाकर दमन करो वह ऐसे, सिंह हस्ति को करता जैसे ।।४१।।
बली तेजस्वी हो सुत! मेरे, दश दिश हैं फैले यश तेरे ।
अरि को अपने हाथ दिखाना, निजबल की अति धाक जमाना ।।४२।।
ले आदेश चला सेनानी, योद्धा कुशल बड़ा अभिमानी ।
मेघनाद मेघों सम नादी, मायी, मोहक, बल-पक्षवादी ।।४३।।
उसने ऐसे बाण चलाये, जो हनुमान् में आ समाये ।
पीड़ा करते रक्त बहाते, आर पार थे होते जाते ।।४४।।
धृतिवान हनुमान् न डोला, अपना उसने भी बल तोला ।
मेघनाद को घोटा घेरा, मथन किया फिर फिर बहुतेरा ।।४५।।

* चौपाई।

मेघनाद जब अति घबराया, उसने ब्रह्मास्त्र चलाया ।
हनुमान् में वह घुसा त्यों ही, लोह में बिजली जाय ज्यों ही ।।४६।।
उस पर तब अति मूर्छा आई, गिरा वह वज्र-हत की नाई ।
असुर दलों ने हर्ष मनाया, लगे पीटने उसकी काया ।।४७।।
रस्से ले सभी लम्बे मोटे, उसके अंग बड़े सब छोटे ।
असुर सुत ने कस के तथा ही, बाँधे, हस्ति बांधे यथा ही ।।४८।।
जब सचेतता उस ने पाई, बन्धन देख बड़े दुःख दाई ।
असुर भूप का मिलना सोचा, भावी का बल भी आलोचा ।।४९।।
मार पीट वे बहुत सताते, कह कुवचन खींचे ले जाते ।
सुबद्ध घोड़े हाथी को ज्यों, उसे ले गये नरपति पै त्यों ।।५०।।
कहता कोई इसको मारो, इस की चमड़ी खींच उतारो ।
जीते को अग्नि में जलाओ, भून कर अभी इसको खाओ ।।५१।।
असुर जनों की सहते गारें, भयंकर कथनी कटु ललकारें ।
राई भर हनुमान् न कांपे, थके डरे नहीं, न तो हांपे ।।५२।।
[डरते जो ही मरते सो ही, वीर जन को डर नहीं कोई ।
जग में दुर्बल दास कहाते, भीरु ही दीन दुःखी दिखलाते ।।५३।।
कूद पड़े जो साहस सेती, विपद् सहे आवे भी जेती ।
जीवन जोखिम में कर डाले, आन बान पर पूरी पाले ।।५४।।
ध्येय-धुरा पर धैर्य धारे, रहते तन मन धन को वारे ।
बन्धन वध ताड़न जो पाते, वे ही बन्धों को अन्त छुड़ाते ।।५५।।
बन्धन मोचन कारण से ही, वीर पड़ा अति बन्धन में ही ।
लड़ना भिड़ना मार हटाना, रचा उसने उपाय बहाना] ।।५६।।
रावण देखा उसने ऐसा, अंजन गिरी नील हो जैसा ।
लम्बे होंठों दान्तों वाला, तीखे दशन नखों युत काला ।।५७।।

लाल किये वह दोनों आँखें, मलता हाथ दबाता काँखें ।
उच्च सिंहासन पर विराजा, मुकुट मणि विभूषित राजा ।।५८।।
कहा नृप ने, सचिव हमारे, प्रहस्त! पूछो भेद न्यारे ।
इसने क्यों है बाग बिगाड़ा, किंकर जन को मारा ताड़ा ।।५६।।
है कौन यह कहाँ से आया, इसने क्यों उत्पात मचाया? ।
बोला वह, निर्भय हो जाओ, उत्तर प्रश्नों के बतलाओ ।।६०।।
सचिव वचन सुन निर्भय सो ही, बोला वीर स्थिर मन हो ही ।
सुग्रीव का शुभ आज्ञा-कारी, राघव का मैं हूँ अनुसारी ।।६१।।
कार्य से मेरा है आना, बल दिखाना भेद को पाना ।
सो कार्य मैं हूँ कर पाया, इससे मैंने समर रचाया ।।६२।।
खोज रहा था मैं तो सीता, देखी यहां वह बड़ी विनीता ।
तव बन्धन में बन्द पड़ी है, सहती ताड़ना अति कड़ी है ।।६३।।
राघव-भार्या जनक-दुलारी, हर लाये तुम आर्या नारी ।
अनर्थ कर्म किया है भारा, तुमने न्यायाचार विसारा ।।६४।।
सुनो सुग्रीव-सन्देश सारा, उसने पूछा कुशल तुम्हारा ।
कहा बनो नहीं अत्याचारी, पर की भार्या का अपहारी ।।६५।।
सदाचार है सब सुख दाता, धर्म अर्थ दोनों का त्राता ।
दोनों लोक में मान बढ़ाता, पाप पतन से बहुत बचाता ।।६६।।

नौवाँ सर्ग

*वानर पति का कथन है, पर नारी अपहार ।
तुम्हें नहीं है शोभता, है न उचित आचार ।।१।।

* दोहा।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

होते आसक्त भूप न, पर नारी के बीच ।
उच्च पुरुष करते नहीं, ऐसा कुकर्म नीच ।।२।।
भेजा वानर-राज का, मैं आया हूँ दूत ।
सचिव स्नेही सुग्रीव का, प्रिय पवन का पूत ।।३।।
सिया खोज में घूमता, आया हूं इस पार ।
मैंने लंका के सभी, देखे हैं घरबार ।।४।।
बंदी घर में जानकी, देखी दुखिया दीन ।
दासी-दल अति दुष्ट के, रहती हुई अधीन ।।५।।
तेरे गृह में वह तो, पाती है अति त्रास ।
राज-धर्म विपरीत है, उसका यहाँ निवास ।।६।।
मैंने दर्शन कर लिए, पाया पुण्य महान् ।
अगले समुचित कर्म को, लेंगे रघुपति जान ।।७।।
असुर-राज! सच समझिए, तीन लोक सब ठौर ।
रामचन्द्र के तुल्य न, मिलता नरवर और ।।८।।
तेजोबल में बुद्धि में, पराक्रम गुणवान् ।
रामचन्द्र सम न मिले, वीर भी शक्तिमान् ।।६।।
जग में जन तो है नहीं, सह ले उसका क्रोध ।
जननी ने जाया नहीं, जो कर सके विरोध ।।१०।।
हितकर है तेरे लिए, जाना उसके पास ।
क्षमा मांगना दे सिया, बन रहना अनुदास ।।११।।
विषमय अन्न ज्यों न पचे, त्यों यह समझ विचार ।
सीता के अपहरण से, होगा तव संहार ।।१२।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

†हनुमत् के सुन कथन करारे, क्रोध-अग्नि भड़काने हारे ।
वध-आज्ञा तब उसे सुनाई, रावण ने वह अति दुःखदाई ।।१३।।
कहा विभीषण ने, मम भ्राता!, दूत अवध्य कहा है जाता ।
वध इसका तो उचित नहीं है, ऐसा होता न भी कहीं है ।।१४।।
कहे नहीं वह अपनी वाणी, पराधीन है वह तो प्राणी ।
जो भेजे हो उत्तर दाता, दोषी भी वह ही कहलाता ।।१५।।
अच्छा बुरा होवे भी कैसा, दूत कहे, प्रेरा हो जैसा ।
वह नहीं है इच्छा-चारी, इसलिए न वध अधिकारी ।।१६।।
तुम चलकर अति गहरी चालें, शत्रु की गलने दो न दालें ।
भेजो अनुचर मोहक मायी, बान्ध पकड़ वे दोनों भाई ।।१७।।
मंगवाओ शक्ति से ऐसे, पक्षी पकड़ कर लाते जैसे ।
जान जायेंगे वन-विहारी, राजन्! इससे शक्ति तुम्हारी ।।१८।।
असुर-पति ने कहा माना, निरपराधी दूत को जाना ।
आग लगा कर उसको छोड़ा, समुचित मान दण्ड यह थोड़ा ।।१९।।
पुर में वह तब गया घुमाया, अपमानित भी गया बनाया ।
हनुमान् ने यह विचारा, शक्ति से पाऊँ मैं निस्तारा ।।२०।।
तोड़े बन्धन बल से भारे, मुख से जय जय शब्द उच्चारे ।
उछल कूद करता बहुतेरी, रवि सम चमका वह उस बेरी ।।२१।।
मुख्य भवन घर देख अटारी, सज धज जिनमें रहती भारी ।
उसने उनको आग लगाई, वानर माया भी दिखलाई ।।२२।।
हा हा कार मचा तब भारा, भीत हुआ जन-मण्डल सारा ।
नभ मण्डल में धूँआ छाया, ज्यों हो घनतर कुहरा आया ।।२३।।

---

† चौपाई।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

पुर के सब जन फिरते भागे, काम काज सब कुछ ही त्यागे ।
दूत कथा कह अति घबराते, दान्तों उंगली वे दबाते ॥२४॥
ऐसे करके कर्म अनोखे, धूर्त-धुरीण को देकर धोखे ।
हनुमत् जी पुर बाहर आये, सज्जित उसने अंग बनाये ॥२५॥
कूद सिन्धु में तरता जाता, नभ में रवि-रथ सम था भाता ।
भुज-बल से तर सागर पूरा, इस तट पर आया नर शूरा ॥२६॥
अंगद आदिक उसके साथी, शूर वीर अरिदल-प्रमाथी ।
बालू पर बैठे थे ऐसे, म्रियमाण मानव हो जैसे ॥२७॥
उनसे निकल रही थी आशा, उन पर बढ़ती निपट निराशा ।
मन में रहती दुविधा छाई, हर्ष-चिन्ह न देते दिखाई ॥२८॥
पूर्ण शशि घन से विलसाता, देखा उन्होंने तथा वह आता ।
पूरे विधु से सागर ज्यों ही, देख उसे उमड़े वे त्यों ही ॥२९॥
सहित पूर्ण हर्ष की रेखा, उसका मुख उन सब ने देखा ।
सफल मनोरथ होकर आना, महावीर का सब ने माना ॥३०॥
आगे दौड़ मिले वे प्यारे, लम्बे कर कर भुजा पसारे ।
गले मिले पीडन कर बाहें, हर्षित लेते सुख की आहें ॥३१॥
छाती दबाते फिर उठाते, बार बार गद् गद् हो जाते ।
प्रेम हर्ष के अश्रु बहाते, मंगल मेल थे मधुर मनाते ॥३२॥
बैठे मिलकर वे सब स्नेही, सब देह में एक बन देही ।
यात्रा-वृत्त सुनते ज्यों ज्यों, सुहर्ष विस्मय पाते त्यों त्यों ॥३३॥
आदि से अन्त तक जो बीता, जैसे देखी देवी सीता ।
जैसे वनिता बाग उजाड़ा, रचा गया ज्यों समर अखाड़ा ॥३४॥
जैसे थी अति मूर्च्छा आई, हुई यथा थी मार पिटाई ।
गई यथा थी आग लगाई, उसने वह सब बात सुनाई ॥३५॥

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

बहुत देर तक हर्ष मनाते, जय जय राघव की गुँजाते ।
गुण-गीत हनुमान् के गाते, रहे वे सब मोद में माते ।।३६।।
जाम्बवान् की अनुमति सेती, सेना-सरित् फिरी लहरें लेती ।
जिस पथ से वह सेना जाती, जन-मन मुख तन को विकसाती ।।३७।।
वायु-वेग वत् दौड़ लगाते, किष्किन्धा को थे वे जाते ।
जिस उद्यान में ठहरे वे ही, गूंजे नाद विजय जय के ही ।।३८।।
राज बाग था शोभा वाला, सुन्दर थी उस में तरु-माला ।
विकसित थे वहाँ कुसुम क्यारे, महा मधुर फल थे रस वारे ।।३६।।
चुन चुन फल सैनिक थे खाते, हंसी क्रीड़ा अधिक मचाते ।
मधु-वन में जा मधु के दौने, भर भर पीये बहुत उन्होंने ।।४०।।
वन-पालक दधिमुख ने क्रीड़ा, कही भूप को पाते पीड़ा ।
फलों का खाना मधु उड़ाना, सब का मिल जुल खेल रचाना ।।४१।।
सुन, हंसना खेलना गाना, उनका उत्सव मोद मनाना ।
सुग्रीव नरपति ने यह जाना, है सफलता सहित ही आना ।।४२।।
कहा भूप ने दधिमुख जाओ, यहाँ अभी उनको भिजवाओ ।
अंगद को वह बोला जा के, सहित विनय स्व सीस झुकाके ।।४३।।
राजन्! नरपति मिलना चाहें, बैठे हैं राघव की बायें ।
उचित शुभ है जाओ अभी ही, तुरन्त मिलकर आप सभी ही ।।४४।।
अंगद ने तब चलना प्रेरा, दौड़ पड़ा वह सारा डेरा ।
जय जय से भू नभ कम्पाते, वे जाते थे हर्ष बढ़ाते ।।४५।।
हर्ष-नाद सुनकर नर राजा, बोला राघव पास विराजा ।
विजय सफलता नाद बताता, मंगल शुभ है जाना जाता ।।४६।।
शुभ-सूचक यह आज घड़ी है, आशा जाती अधिक बढ़ी है ।
इन बातों में आते दीखे, विकसित मुख वे कमल सरीखे ।।४७।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

आगे थे वे दोनों नेता, हनुमान् अंगद नीति-वेत्ता ।
पीछे सेना सब थी आती, तारा-गण ग्रह सम हर्षाती ।।४८।।

दसवाँ सर्ग

*अंगद श्री हनुमान् जी, दोनों बड़े विनीत ।
राघव लक्ष्मण को मिले, चरण पकड़ कर प्रीत ।।१।।
वन्दना कर सुग्रीव को, बोले श्री हनुमान् ।
नियम धर्म में है सिया, जीवित है बिन हान ।।२।।
'देखी है मैंने सती', कहना सुधा समान ।
सुन कर राघव अनुज में, उमड़ा हर्ष महान् ।।३।।
सजल स्नेहयुत नयन से, अति कृतज्ञता साथ ।
लगे देखने तब उसे, लक्ष्मण सह रघुनाथ ।।४।।
उनके हर्ष अपार से, गूँजा जय जय घोष ।
हर्षित वानर सब हुए, पाकर शुभ सन्तोष ।।५।।
यात्रा की बातें कही, घटना सहित विस्तार ।
कहा सर्व हनुमान् ने, करना सागर पार ।।६।।
वर्णन सीता का किया, विस्तर सहित विशेष ।
उस के कटुतर कष्ट की, कही कहानी शेष ।।७।।
बन्धन में पड़ना कहा, अपना सह उपहास ।
आग लगाना नगर को, जलना मुख्य निवास ।।८।।
बोला श्री रघुराज को, फिर वह वर नर-राज ।
सिमरन करती है सिया, तुम्हें अति महाराज ।।९।।

* दोहा।

प्रेम भक्ति पतिदेव की, उसका है आधार ।
नीरस है राघव बिना, उस का सब संसार ।।१०।।
उस के जीवन की जड़ी, है तेरा शुभ नाम ।
चरण-शरण के ध्यान में, रहती है सब याम ।।११।।
घोर कष्ट है सह रही, बहुत वेदना साथ ।
उग्र तपस्या करती है, बंदीघर में, नाथ! ।।१२।।
सूखी कांटा है बनी, रहीं अस्थियां दीख ।
रक्त-रहित तस अंग हैं, निसृत रस ज्यों ईख ।।१३।।
अति कृशा है हो रही, बनी वर्ण से पीत ।
निराहार में सब समय, उस का जाता बीत ।।१४।।
जीर्ण शीर्ण शाटिका, तन पर रही लपेट ।
नीन्द बिना है काटती, रातें रीते पेट ।।१५।।
राघव-नाम उच्चार कर, लम्बे ले उच्छ्वास ।
मूर्छित हो निर्जीव सी, रहती पड़ी उदास ।।१६।।
झरता उस के नयन से, विरह-वारि बन बूँद ।
विषम वेदना बहुत पर, लेती आँखें मूंद ।।१७।।
पंख नोचने से बने, पंछी व्याकुल दीन ।
तड़पे जल से हीन हो, जैसे कोमल मीन ।।१८।।
ऐसे देव! वियोग में, दुखिया है दिन-रात ।
कमल कलेजा कांपता, उसकी करके बात ।।१६।।
रोते रोते है दिया, उस ने यह सन्देश ।
चूड़ामणि यह चिन्ह है, उसका दिया, नरेश! ।।२०।।
देना राघवराज को, ले सुग्रीव को पास ।
कहना जीवन प्राण की, यह पूँजी थी रास ।।२१।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

दर्शन कर इस रत्न के, होता मुझको भान ।
मेरे बहुत समीप हैं, श्री रघुपति भगवान् ।।२२।।
कहियो, उसने था कहा, देखूंगी तव बाट ।
दो मासों तक फिर असुर, मुझको देंगे काट ।।२३।।
खण्ड खण्ड मम मांस कर, खा जायेंगे पाप ।
पुनः मुझे इस लोक में, पा न सकोगे आप ।।२४।।
कटूं मरूँ मैं तो भले, कभी न दूँगी लाज ।
जीऊँ चाहे सौ वर्ष, जाऊँ मारी आज ।।२५।।
की जाऊँ मैं भस्म भी, छोड़ूँ तदपि न आन ।
अर्पित हैं पति-प्रेम में, मेरे प्यारे प्राण ।।२६।।
यों कह सर्व विस्तार से, समाचार अति खोल ।
रामचन्द्र को दे दी, उस ने मणि अनमोल ।।२७।।
*लेकर वह मणि अति सुखदाई, रघुराज ने हृदय लगाई ।
लक्ष्मण सह राघव जी रोते, बोले बहुतर व्याकुल होते ।।२८।।
सुग्रीव! मणि मुझको अति भाती, सिया-मस्तक पर थी सुहाती ।
विवाह-काल जनक ने दी थी, पितृ देव ने कर से ली थी ।।२९।।
गई सिया को यह पहराई, शशि शोभा सम शान्त सुहाई ।
पिता ससुर हैं सिमरन आते, महा रत्न पर नयन टिकाते ।।३०।।
जब देखे निज बछड़ा गाये, तस स्तन में दुग्ध आ जाये ।
देख तथा यह रत्न सुहाता, हृदय मेरा पिघला जाता ।।३१।।
जब से मणि दृष्टि में आई, मानों मैंने सीता पाई ।
रोम-रोम है हर्षित ऐसा, सिया मिलन पर होता जैसा ।।३२।।
राघव ने तब हाथ बढ़ाया, हनुमान् को छाती लगाया ।
कहा, वनी पै है यह देना, प्रेम-मिलन प्रेमी! ले लेना ।।३३।।

* चौपाई।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

तव उपकार एक जो ले लूँ, उसके बदले निज तन दे दूँ ।
तदपि न उऋणता पाऊँ, चाहे सब कुछ वार दिखाऊँ ।।३४।।
पर वे तो अनेक हैं तेरे, प्राण ऋणी रहेंगे मेरे ।
असम्भव प्रतिकार चुकाना, जीवन दे भी मैंने माना ।।३५।।
जभी सखा पर विपदा आयें, उस समय बदले दिये जायें ।
नहीं दिया मैं बदला चाहूँ, सहित ऋण चाहे मर जाऊँ ।।३६।।
तू ने राघव कुल को तारा, मुझ को लक्ष्मण सहित उभारा ।
समाचार जो तू है लाया, उस ने मुझे सवंश बचाया ।।३७।।
भीतर से मन तन सब मेरा, बहुत कृतज्ञ सखे! है तेरा ।
शूर वीर उत्तम नर तू ने, कर्म किये आशा से दूने ।।३८।।
पा कर प्रभु-प्रेम-प्रसादी, वह बन गया बहुत आह्लादी ।
गुरु-गले मिला लिपटा त्यों ही, मां से बिछुड़ा बालक ज्यों ही ।।३९।।
गुरु-आँसू अभिषेक रचाते, शिष्य-दीक्षा-दृश्य दिखाते ।
शिष्य के अश्रु थे विलसाते, गुरु-चरणों पर अर्घ्य चढ़ाते ।।४०।।
[प्रेम पगे प्रेमी कहलायें, सिर दे दें पर दाम न चाहें ।
प्रीति भरे पीकर वे प्याले, अर्पण प्राण करें मतवाले ।।४१।।
पीछे पैर नहीं तो मोड़ें, सिर जावे पर साथ न छोड़ें ।
होवें कभी न द्वेषी द्रोही, क्रीत उन्हें कर सके न कोई ।।४२।।
गुरुवर भी होते सुखदाई, बनते जो पिता और माई ।
शिष्य जनों पर जाते वारे, भेद भाव से रहते न्यारे ।।४३।।
उन के होते जन अनुयायी, जो न स्वार्थी मोह-युत मायी ।
अनुगामी पर जीवन देते, मधुर वचन से मन हर लेते ।।४४।।
सरल सत्य से जो अपनाते, बन्धु बनते प्रेम के नाते ।
रघुराज हनुमान् सी जोड़ी, सुगुरु शिष्य की मिलती थोड़ी] ।।४५।।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

बोले रघुपति, सोम! सुनाना, सीता कष्ट-कथा बतलाना ।
प्यासे जन को जैसे पानी, ऐसे मुझे है वह कहानी ।।४६।।
उसने पुनरपि कथा उच्चारी, सिया-व्यथा की आदि से सारी ।
देव! देवी न जग में दीखी, दूसरी दिव्य सिया सरीखी ।।४७।।
रहती निरन्न निरन्तर रोती, निश दिन में वह कभी न सोती ।
सती-धर्म में धरणी समाना, रहती सहती दुखड़े नाना ।।४८।।
उस का व्रत नियम है पूरा, कोई कर्म न मिले अधूरा ।
निश्चल निश्चय चित्त तथा ही, अचल-चूल अविचला यथा ही ।।४६।।
व्रत-वेदी पर बलि बनाना, तन मन धन सुख सम्पत् प्राणा ।
उस के लिए तो सुगम बड़ा है, वज्र सम दिल उसका कड़ा है ।।५०।।
तेरी बात सुनते सुनाते, उस के आँसू हैं भर आते ।
इक टक निरखे नभ को ऐसे, आप खड़े हों ऊपर जैसे ।।५१।।
सिर नीचा कर आंखें मूँदे, अटूट टपका आंसू-बूँदें ।
गुन गुन बातें करती जाती, ज्यों हो आपको व्यथा सुनाती ।।५२।।
कहां तक कहूँ कटुतर ऐसी, पीड़े प्राण कथा इस जैसी ।
शीघ्रतर होना रघुराई, प्रिया पत्नी का प्रबल सहाई ।।५३।।
सुन सर्व हनुमान् की वाणी, राघव की काया थर्रानी ।
बोले मुख से गद् गद् होते, सीता-दुःख से छम छम रोते ।।५४।।
सहित सुग्रीव हम यान करेंगे, विपद् सिया की सर्व हरेंगे ।
खलअरिदिल-बलछलमथ सारा, करेंगे उसका ही निस्तारा ।।५५।।
बांके वाण लखन के तीखे, वैरी पर बन वज्र सरीखे ।
पड़ेंगे रक्त बहुत बहाते, तन पिंजर को चूर बनाते ।।५६।।
अंगद आदिक आप चलोगे, दस्यु दुष्ट दलों को दलोगे ।
न्याय धर्म स्थापन कर ऊँचा, दिखलाओगे सत्य समूचा ।।५७।।

(रामायणसार पृ. १)

रामायण-माहात्म्य

पुण्य-पाठ रामायणी, पूर्ण पावन रूप ।
पूरे प्रेम से जो पढ़े, सो हो पुण्य सुरूप ।।१।।

*शुभ शान्ति बसे तन में मन में, मुद मंगल मोद मनोगम आवे ।
समुज्ज्वल जीवन जोत जगे, जग जातिक जीवन भी जग जावे ।।
सुख सम्पत् ज्ञान विज्ञान बढ़े, सुविवेक विचार खिले विकसावे ।
वर बोध विलास करे चित्त में, जब राघव-गीत गुणीवर गावे ।।२।।

चित्त चाँद चढ़े चमके नवता, शुचि चारित चारु पढ़े जब ही जो ।
मतिमान् बने गुणवान् बने, मन से जन पाठ करे तब ही तो ।।
हरि प्रेम भक्ति विलसे मन में, पर पावन रूप बने सब ही सो ।
गुण-गान करे कर भाव सदा, सुर सम्पद् लाभ मिले शुभ ही हो ।।३।।

बलवान् बने वरवीर बने, जन धीर बने सब दोष निवारे ।
उर में अति तेज उत्साह सदा, शुभ साहस-भाव बड़ा विस्तारे ।।
जय लाभ करे जग जीत जिये, करके बढ़ती न कदाचित् हारे ।
पहले पद डाल फिरे न उससे, जब राघव-गीत सुने उच्चारे ।।४।।

उपकार करे परहेतु जिये, जन दीनन के दुःख दूर नसावे ।
पर कारण क्लेश कठोर सहे, परहेतु दुष्कर कर्म कमावे ।।
हितकार रहे पर पीड़ित का, पर त्रास हरे भय भार भगावे ।
दुख दारुण में न टले शुभ से, जिसमें शुचि चारित सार बसावे ।।५।।

सद्काम करे सद्वाक् कहे, कथनी करनी सद्रूप निभाये ।
जन में जग में सद्भाव भरे, निज जीवन से सद्जोत जगाये ।।

* सवैया सुन्दरी।

जिस देश बसे उसके हित ही, तन धान सभी बलिदान बनाये ।
अति पावन पाठ पढ़े जब जो, मन भीतर राघव-प्रेम रमाये ।।६।।

*भावुकता उपजे उछले जब, जो जन हो इसका अनुरागी ।
प्रेम—पगा परमेश—परायण, हो परिवार-रमा बड़भागी ।।
बन्धु विनीत बने सिर देकर, मात-पिता-हित स्व सब त्यागी ।
राघव-जीवन जोत जगे जब, जाय जन्म जड़ता जड़ भागी ।।७।।

सेवक भाव बढ़े दिन ही दिन, दीन दशा पर की जब पावे ।
भीतर से पिघले दुखिया लख, दूषण दोष तुरन्त नसावे ।।
आप तपे पर-ताप लखे जब, हीन हतों हित हाथ बढ़ावे ।
कारुणभाव बसे उसमें अति, राघव-जीवन जो जन ध्यावे ।।८।।

राघव-जीवन, जीवन में जब, जो जन धार रहे दिन-राती ।
साख जमे जनता जन में तस, प्रीति परा उसमें जग जाती ।।
आपस में मिल प्रेम करे बहु, न्याय करे न बने पक्षपाती ।
राघव का अनुकार रहे वह, एक करे पर स्व जन नाती ।।९।।

मंगल-मूल मनोहर मोहक, मोदक जीवन जो मन धारे ।
मान महामति माधुरता शुभ, मेल मिले, कर भाव विचारे ।।
चार मिलें फल सुन्दरता सुख, ओज सुतेज सुरूप पसारे ।
कोमल काम करे कटुता तज, हो वह राघव राज सहारे ।।१०।।

काम करे निष्काम सदा वह, स्व परता उसमें न समाये ।
योग कर्मयुत राधन भी कर, संगति संहति मेल बढ़ाये ।।
संमिलना जनता मन में भर, भेदक भाव-कुभीत गिराये ।
भ्रामक भूत भगें उससे सब, राघव चारित चांद चढ़ाये ।।११।।

* मत्तगयन्द।

मानव मेल रमे मन में तस, मेल-मिलाप जपे मधु-माला ।
मानुष मंगल काज करे वह, धार धर्म न टले वह टाला ।।
धृति धुरा पर धीर बना रह, शोभन सुन्दर हो शुभ शाला ।
वैर विरोध विशेष विघ्न हर, दास पने पर दे जड़ ताला ।।१२।।

दीख पड़े दमशील सदा वह, दुःख हरे पर, होकर दानी ।
हो दक्ष दीक्षित दीन-दयायुत, दे दिल देह उदार अमानी ।।
साधु सखा सुखकार रहे सम, शोभित शान्त सुशील विज्ञानी ।
राघव-राज बसे जिस भीतर, जाय नहीं उसकी गति जानी ।।१३।।

मोक्ष मिले मन मैल मिटे, मति, हो विमला सरला शुचि सारी ।
चेतन ज्योति जगे चमके अति, भासित भानु-विभूतिक भारी ।।
भाव भले भरपूर भरे मन, आभ विभूषित हो सुखकारी ।
राघव-जीवन हो जब भीतर, प्रीति परा, विकसे फुलवारी ।।१४।।

राम रमे मन राम मिले मन, राघव राज जनों पर राजे ।
राम सिया जय-नाद गर्ज कर, भू नभ में सब ओर विराजे ।।
हो जन में मन में जग में जय, ध्वनि दशों दिश में जय गाजे ।
पातक-पावन पाठ पढ़े जब, सूचक जीत बजें जय बाजे ।।१५।।

(रामायणसार पृ. ६०६)

''रामायण कलि कमल में, है सुगन्ध मकरन्द।
हो नहीं कभी मन्द यह, याचे सत्यानन्द।।

सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः (७ बार)